बाण-कृत

हर्षचरित

उत्तरार्ध, उच्छ्वास ५–८

हिन्दी-अनुवाद

अनुवादक

सूर्यनारायण चौधरी एम० ए०

प्रकाशक

संस्कृत-भवन, कठौतिया

पो० काभा, जिला पूर्णियाँ

(बिहार)

प्रथम संस्करण] जून १९४८ ई० [मूल्य २॥)

प्रकाशक
संस्कृत-भवन, कठौतिया
पो० काभा, जिला पूर्णियाँ
(विहार)

प्रथम संस्करण १०००

आषाढ़ $\frac{\text{२००५ वि० सं०}}{\text{२४९२ बु० सं०}}$

मुद्रक
श्री अपूर्वकृष्ण बसु,
इंडियन प्रेस, लिमिटेड,
बनारस-ब्रांच।

निवेदन

महाकवि बाण बिहार प्रान्त में शोण नदी के किनारे प्रीतिकूट नामक ग्राम में रहते थे। वे सम्राट् हर्षवर्धन (६०६–४७ ई०) के समकालीन और कृपा-पात्र थे। बाण-कृत कादम्बरी और हर्षचरित दोनों उत्कृष्ट गद्य-काव्य हैं। पहली दूसरे से अधिक सरस और सुन्दर है। कादम्बरी में कवि स्वच्छन्दतापूर्वक कल्पना-लोक में विचरण करता है; किंतु हर्षचरित में वह वास्तविक जगत् में उतरकर वास्तविक घटनाओं का वर्णन करता है। पहली की कथा और पात्र सभी काल्पनिक हैं, किंतु दूसरे का आख्यान और सभी प्रमुख पात्र ऐतिहासिक हैं।

हर्षचरित काव्य भी है और इतिहास भी। इसके आरम्भिक सवा दो उच्छ्वासों में बाण का संक्षिप्त आत्म-चरित और शेष उच्छ्वासों में हर्ष का अधूरा, किंतु प्रामाणिक जीवन-चरित है। जहाँ काव्य होने के नाते इसमें अतिशयोक्तियों और अलङ्कारों की भरमार है वहाँ इसमें वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं की सत्यता समकालीन शिलालेखों और चीनी यात्री ह्युएनसांग के यात्रा-विवरण से प्रमाणित होती है। कितने ही विद्वानों ने हर्षचरित के कितने ही अलङ्कारों में भी प्रच्छन्न ऐतिहासिक तथ्यों का सफलतापूर्वक उद्घाटन किया है। निस्सन्देह इसमें हर्ष के जीवन की प्रत्येक घटना पर प्रकाश नहीं डाला गया है। सम्राट् का सम्पूर्ण जीवन-चरित लिखने का बाण का अभिप्राय भी नहीं था जैसा कि तीसरे उच्छ्वास के इस वाक्य से ही सिद्ध होता है:—

"कः खलु पुरुषायुषशतेनापि शक्नुयादविकलमस्य चरितं वर्ण-यितुम्। एकदेशे तु यदि कुतूहलं वः सज्जा वयम्।"

"सौ पुरुषों की आयु से भी क्या कोई उनके अखण्ड (जीवन-) चरित का वर्णन कर सकता है? यदि एक अंश के लिए आपको कुतूहल हो तो मैं प्रस्तुत हूँ।"

यही कारण है कि समूची पुस्तक पढ़ लेने पर भी हर्ष के राज्य-काल की घटनाओं की हमारी ज्ञान-पिपासा अतृप्त ही रहती है। किंतु उस समय के ग्राम नगर जनपद समाज धर्म तपोवन आश्रम राज-कुल आदि का बहुत ही विशद एवं सजीव वर्णन हुआ है, जिसको पढ़कर तत्कालीन सभ्यता और संस्कृति का चित्र हमारी आँखों के सामने आ जाता है।

हर्षचरित एक दुर्बोध ग्रन्थ है। इसकी एक ही प्राचीन व्याख्या (टीका) शङ्कर-कृत उपलब्ध है। वह भी अत्यन्त संक्षिप्त और विद्वानों के लिए ही है, जैसा कि व्याख्या के इस अन्तिम श्लोक से प्रकट है:—

"दुर्बोधे हर्षचरिते संप्रदायानुरोधतः।
गूढार्थोन्मुद्रणं चक्रे शङ्करो विदुषां कृते॥"

"(मैं) शङ्कर ने गुरु-परम्परा के अनुसार दुर्बोध हर्षचरित के गूढ़ अर्थों को विद्वानों के (उपयोग के) लिए खोला।"

किंतु आधुनिक विद्वानों ने संस्कृत और अँगरेजी में विस्तृत टीका-टिप्पणी लिखकर इस अभाव को दूर किया है। अँगरेजी में कावेल ने हर्षचरित का बहुत ही सुन्दर अनुवाद किया है। हिन्दी में भी प्यारेलाल दीक्षित-कृत एक बहुत ही संक्षिप्त अनुवाद (हर्षचरित भाषा) है। ऐसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक का हिन्दी में एक पूरा अनुवाद होना

आवश्यक समझकर मैंने यह प्रयास किया है। अपने अनुवाद में मैंने जिन ग्रन्थों से सहायता ली है उनमें प्रमुख ये हैं:—

१—शङ्कर-कृत संस्कृत व्याख्या।

२—कणे-कृत संस्कृत और अंग्रेजी टिप्पणी।

३—जीवानन्द-कृत संस्कृत व्याख्या।

४—कॉवेल और टॉमस-कृत अँग्रेजी अनुवाद।

इतनी सहायक पुस्तकों से सहायता लेने पर भी अनुवाद-कार्य का यह प्रथम प्रयास होने के कारण, मूल पुस्तक की शैली की जटिलता के कारण तथा मूल के समीप रहने की अपनी इच्छा के कारण मेरा अनुवाद कहीं कहीं त्रुटिपूर्ण और दुर्गम अवश्य हुआ होगा। इन त्रुटियों को दूर करके में विद्वान् पाठकों की सहायता अपेक्षित है।

समूची पुस्तक का अनुवाद १६३६ ई० के दिसम्बर में ही पूरा हो गया था। किन्तु युद्ध-जन्य परिस्थितियों के कारण यह अब तक पुस्तकाकार प्रकाशित न हो सका। समय-समय पर अनुवाद के कुछ अंश तथा इसके आधार पर लिखे गये लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। इनकी पूरी सूची यहाँ दे रहा हूँ:—

१—बाण के काव्य-सम्बन्धी विचार—विशाल भारत,

मार्च १६३८ ई०।

२—कन्यादान-विषयक चिन्ता—विशाल भारत,

मई १६४२ ई०।

३—बाण की जीवनी—सरस्वती,

अक्तूबर १६३८ ई०।

४—भैरवाचार्य और पुष्पभूति—सरस्वती,

दिसम्बर १९३८ ई० ।

५—राज्यश्री—धर्मदूत,

१९४० ई० ।

६—बाण का जीवन-वृतान्त—प्रचीन भारत,

१९४१ ई० ।

७—हर्षचरित की शैली—प्राचीन भारत,

१९४१ ई० ।

८—राज्यश्री—प्राचीन भारत,

१९४१ ई० ।

९—हर्षचरित में यन्त्रों का उल्लेख—प्राचीन भारत,

१९४१ ई० ।

१०—पञ्चम और अष्टम उच्छ्वास का अनुवाद—

ओ० का० मेगजीन, नवम्बर १९४१ ई० ।

११—षष्ठ और सप्तम उच्छ्वास का अनुवाद—

ओ० का० मेगजीन, फर्वरी १९४३ ई० ।

११—तृतीय उच्छ्वास का अनुवाद—

ओ० का० मेगजीन, मई १९४५ ई० ।

१३—चतुर्थ उच्छ्वास का अनुवाद—

ओ० का० मेगजीन, अगस्त १९४५ ई० ।

मैं श्रद्धेय स्वर्गीय डा० लक्ष्मण स्वरूप का हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिनकी कृपा से मेरे अनुवाद का अधिकांश उनके द्वारा सम्पादित

पत्रिका (ओरियन्टल कालेज मेगजीन, लाहौर) में प्रकाशित हुआ। अब इसमें से ही चार उच्छ्वासों (५—८) को दुहराकर यहाँ पुस्तकाकार प्रकाशित कर रहा हूँ। आरम्भिक चार उच्छ्वासों को भी विस्तृत भूमिका और अनुक्रमणी के साथ शीघ्र ही प्रकाशित करने की चेष्टा करूँगा।

कठौतिया
वैशाख, संवत् २००५

सूर्यनारायण चौधरी

हर्षचरित

पञ्चम उच्छ्वास

१—विधाता मनुष्यों को पहले सुख देकर पीछे दारुण दुख देता है, जैसे चपल बिजली आलोक उत्पन्न कर वज्र गिराती है।

२—घूमता हुआ अनन्त काल अकेला एक ही बार अनेक महापुरुषों का आसानी से नाश करता है, जैसे घूमता हुआ[1] एक शेषनाग एक ही समय बहुत से पहाड़ों को आसानी से गिरा देता है।

अनन्तर एक बार राजा ने राज्यवर्धन को बुलाया, जो कवच पहनने के वयस का हो गया था। और, जैसे सिंह अपने बच्चे को हरिण मारने के लिए भेजता है, वैसे ही उसने कुमार को अपरिमित सेना का नायक बनाकर पुराने अमात्यों और अनुरक्त महा-सामन्तों के साथ हूणों को मारने के लिए उत्तरापथ भेजा।

उसके प्रयाण करने पर देव हर्ष घोड़ों के साथ कुछ दूर तक उसके पीछे-पीछे गया। (बड़े) भाई ने कैलास की प्रभा से भासित प्रदेश में प्रवेश किया। किन्तु वह मृगलोचन, जो पराक्रम की रुचि के पीछे चलनेवाले वयस में था, बाघ-सिंह-शरभ-शूकरों से भरे हिमाचल के अंचल में शिकार खेलता हुआ कुछ दिनों तक बाहर

१—अपने फनों को घुमाकर।

ही ठहर गया। वहाँ उत्कण्ठित वन-देवताओं के कटाक्षों की किरणों से उसकी शरीर-कान्ति रंगबिरंगी लगती थी। कानों तक खींचे गये धनुष से निकले चमकीले भालों की वर्षा से उसने थोड़े ही दिवसों में जंगलों को हिंसक जन्तुओं से शून्य कर दिया।

एक बार रात के चौथे पहर में प्रातःकाल ही उसने स्वप्न में दुर्निवार दावानल में, जिसकी चञ्चल ज्वालाओं से समस्त दिशाएँ लाल हो गई थीं, जलते हुए एक सिंह को देखा। और, शावकों को छोड़कर उसी दावानल में गिरती हुई एक सिंही को देखा। इस पर उसने सोचा—"संसार में स्नेहमय बन्धन-पाश निश्चय ही लोहे से भी दृढ़तर हैं, जिनसे खिंच कर पशु-पक्षी भी इस तरह का आचरण करते हैं।" जगने पर उसकी बाईं आँख बार-बार फड़की, शरीर अकस्मात् ही काँप उठा; भीतर बंधे रहने के स्थान से हृदय बिना निमित्त के ही चलायमान हुआ, अकारण ही उसे भारी दुख हुआ। "यह क्या है" इस प्रकार उत्पन्न हुए विविध विकल्पों से उसकी मति मथ गई। उसकी धृति चली गई। चिन्ता से उसका वदन नत हो गया और उस चकोरलोचन ने निश्चल पुतलीवाली आँखों से क्षण भर के लिए पृथ्वी को विकसित होती स्थल-कमलिनियों का वन बना दिया। वह उस दिन शून्य चित्त से ही शिकार खेला। दोपहर का समय होने पर वह घर आया और धरती पर बिछी हुई अति-शीतल चन्दन से लिपी, तथा चन्द्र-सदृश धवल उपधान से युक्त, बेंत की (शीतल-) पाटी पर पड़ा हुआ वह आशङ्काएँ करता ही रहा। उसकी दोनों ओर छोटे छोटे तालवृन्त धीरे धीरे झुलाये जा रहे थे।

तब उसने दूर से ही कुरङ्गक नामक दूत को आते देखा। नील रङ्ग के समान श्यामल वस्त्र-खण्ड से, जिसके भीतर एक पत्र था, उसकी मुण्डमाला[१] बनी हुई थी। थकावट और गर्मी से उसका शरीर इतना काला हो रहा था कि जैसे भीतरी शोकाग्नि से (जल-कर) वह कोयला हो रहा हो। अतिवेग से आने में शीघ्रतापूर्वक पैर उठाने से ऊपर उठते हुए धूल समूह के वेष में, राजवार्ता सुनने के कुतूहल से, पृथ्वी मानो उसके पीछे पीछे आ रही थी। सन्मुख पवन में हिलते हुए उत्तरीय के छोरों से उसके दोनों पार्श्वों में पंखे डुलाये जा रहे थे, मानो शीघ्रता से आने के कारण उसे पंख हो गये थे। स्वामी का आदेश मानो उसे पीछे से प्रेरित कर रहा था। सामने निकलती हुई लम्बी साँसों से वह मानो आगे खिंच रहा था। उसके स्वेद-सिक्त ललाट पर प्रतिबिम्बित सूर्य मानो कार्य (जानने) के कौतुक से पत्र का अपहरण कर रहा था। शीघ्रता में मानो भ्रष्ट[२] हुई इन्द्रियों से उसका शरीर सूना था। अन्यमन-स्कता के कारण, मानो पत्र में अर्पित प्रयोजन-भार से, समतल पथ पर भी वह फिसल रहा था। वह मानो कालमेघ का टुकड़ा था, जिससे दुर्वार्तारूपी वज्र गिरनेवाला था, मानो धूम-राशि था, जिससे शोकाग्नि प्रज्वलित होने वाली थी, मानो एक बीज था, जिससे पाप का धाम फलनेवाला था। वह दूत दुर्निमित्त हो गया था।

१—अर्थात् पगड़ी।

२—गिरी हुई। वह इतनी शीघ्रता में था कि उसकी इन्द्रियाँ ठीक से काम नहीं कर रही थीं।

पूर्व के अनिमित्तों की परम्परा से हर्ष को डर हो गया था और दूत को देखकर तो उसका हृदय भग्न हो गया। प्रणाम करने पर निकट आकर कुरङ्गक ने पहले अपने आनन में लगा विषाद अर्पण किया और पीछे पत्र। देव हर्ष ने उसे स्वयं लेकर पढ़ा। पत्र का अथ समझने के साथ ही उसके हृदय में संताप हुआ और उदास होकर उसने पूछा "कुरङ्गक, तात को क्या मन्दता है?" सजल नयन से भग्न अक्षरों में उसने कहा—"देव, दाह-ज्वरो महान्।" यह सुनकर उसका हृदय मानो सहस्रधा फूट गया। पिता की आयु की कामना करनेवाले उसने आचमन कर अपरिमित मणि, कनक, रजत आदि अपनी अशेष सम्पत्ति ब्राह्मणों के अधीन कर दी। बिना भोजन किये ही वह चलने को तैयार हुआ और सामने में खड़े युवक से, जो शिर पर कृपाण धारण किये था, कहा "घोड़े पर पलान दिलवाओ।" वेगपूर्वक दौड़कर अश्व-पाल द्वारा लाये गये घोड़े पर चढ़कर अकेला ही चल पड़ा। उसका हृदय काँपरहा था।

असामयिक प्रयाण-सूचक शङ्ख-नाद से क्षुब्ध अश्वसमूह ने शीघ्रता से सज्जित होकर अपने मुखर खुरों से उत्पन्न ध्वनि से सकल भुवन को भर दिया और सभी दिशाओं से आ-आकर दौड़ते हुए उसका अनुसरण किया। प्रस्थान करने पर उसकी बाईं ओर से जाते हुए हरिणों ने राजसिंह का उपस्थित विनाश सूचित किया। दावाग्नि में सूखे वृक्ष पर सूर्यमण्डल के सामने (बैठा) कौवा मानो हृदय को विदीर्ण करता हुआ दारुण बोली बोल रहा था। बहुत दिनों के सञ्चित मल-पटल से मलिन तनु वाला कज्जलमय-सा एक दिगम्बर

जैन, जो मयूर के पुच्छ से युक्त था, सामने आया। दुर्निमित्तों से उसकी यात्रा अभिनन्दित नहीं होने के कारण वह अत्यन्त शङ्कित था। पितृ-स्नेह से कोमल हुए हृदय से उन दुर्लक्षणों की उपेक्षा करते हुए, घोड़े के कंधे पर निश्चल नेत्रों का लक्ष्य बाँध कर, हँसना और बोलना बन्द कर, मौन हुए भूपालों के आगे आगे चलते हुए उसने बहुत योजनों का मार्ग एक ही दिन में अतिक्रमण किया।

जब राजा की मन्दता (बीमारी) की बात जानकर भगवान् सूर्य मानो उदास और तेज-विहीन होकर अधोमुख हो रहा था, तब भण्डि आदि प्रणायी राज-पुत्रों से बार बार अनुरोध किये जाने पर भी हर्ष ने आहार नहीं किया। आगे चले हुए प्रतीहारों द्वारा पकड़ कर लाये गये ग्रामीणों ने उसे सहज मार्ग बताया। बराबर चलते हुए ही उसने रात बिता दी।

दूसरे दिन दोपहर के समय वह राजधानी पहुँचा। 'जय' शब्द का अन्त हो गया था। तूर्य-नाद अस्त हो गया था। गीत और उत्सव बन्द थे। चारण गा नहीं रहे थे। दूकानों में सौदे नहीं पसारे गये थे। स्थान-स्थान पर कोटिहोम की उठती हुई धूम-रेखाओं से, जो पवन के बल से कुटिल हो रही थीं, राजधानी भर रही थी, मानो यम-महिष के सींगों की नोकों से राजधानी खोदी जा रही थी; या मानो यम-पाश की डोरियों से राजधानी बाँधी जा रही थी। ऊपर मड़राती वायसमण्डलियाँ, मानो यम-महिष को अलङ्कृत करनेवाली काले लोहे की घण्टियाँ, दिन भर कटु बोली बोलकर आसन्न अमङ्गल सूचित कर रही थीं।

कहीं निराहार पड़े हुए स्नेही बान्धव, शिव की आराधना कर रहे थे। कहीं दीपों से जल कर कुल-पुत्र (कुलीन कुमार) माताओं[१] को प्रसन्न कर रहे थे। कहीं नर-मुण्ड का उपहार लाने में उद्यत द्रविड़ वेताल की प्रार्थना कर रहा था। कहीं बाहु-प्राकार उठाकर आन्ध्र चण्डिका को प्रसन्न कर रहा था। अन्यत्र शिर पर रखे हुए पिघलते गुग्गुल से विकल नव सेवक महाकाल का अनुनय कर रहे थे। कहीं स्वजन तेज छुरों से अपना मांस काटकर होम करने में लगे थे। कहीं सामन्तों के पुत्र प्रकट रूप से महा मांस[२] बेचने का प्रक्रम कर रहे थे। राजधानी मानो श्मशान की धूलि से दूषित थी, मानो अमङ्गलों से गृहीत थी, मानो राक्षसों से नष्ट हो गई थी, मानो कलि-काल से कवलित थी, मानो अधर्मद्वारा लूट ली गई थी, मानो पाप-पटल से ढकी थी, मानो अनित्यताधिकारों से आक्रान्त थी, मानो दुर्दैवद्वारा अपना ली गई थी। वह (राजधानी) शून्य-सी, सुप्त-सी, अपहृत-सी, लज्जित-सी, छलित-सी और मूर्छित-सी थी।

बाजार के रास्ते में घुसते ही उसने एक यमपट्टिक[३] को देखा। कुतूहल से आकुल बहुत से बालकों से वह घिरा था। उसके बाएँ

१—माताएँ सात हैं; ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा।

२—नर-मांस।

३—यम का पट दिखाकर जीनेवाला।

हाथ में एक चित्रित पट था, जो लम्बी लाठियों के सहारे पसारा हुआ था। इस पट में एक भीषण महिष पर प्रेतनाथ सवार था। दूसरे हाथ में पकड़े शर-कण्ड से वह परलोक की बात बता रहा था। हर्ष ने उसे एक श्लोक गाते सुना—

सहस्र सहस्र माता-पिता और शत शत पुत्र कलत्र युग युग में बीत गये। वे किसके हुए या आप किसके हैं?

इससे उसका हृदय और भी विदीर्ण हुआ। क्रम से वह राजद्वार पर, जहाँ सभी लोगों का प्रवेश प्रतिषिद्ध था, गया। घोड़े से उतरकर उसने भीतर से निकलते सुषेण नामक वैद्यकुमार को देखा। उसकी मुख-कान्ति उदास थी और वह इन्द्रियों से त्यक्तसा था। उसके नमस्कार करने पर हर्ष ने पूछा—"सुषेण, तात की (अवस्था में) कुछ विशेषता है या नहीं?" उसने उत्तर दिया—"अभी तो नहीं है, शायद कुमार को[1] देख कर हो।" द्वारपालों से प्रणाम किया जाता हुआ वह धीरे धीरे राजकुल के भीतर गया। वहाँ सर्वस्व दान किया जा रहा था। कुल-देवता की पूजा हो रही थी। अमृतचरु पकाने की क्रिया प्रारम्भ हो गई थी। छः आहुतियों का होम[2] हो रहा था। दधि-युक्त घृत से सिक्त अभिनव दूर्वा-

१—श्रीमान् को, आपको।

२—"प्रजापतये स्वाहा" इस प्रकार छः देवताओं का नाम लेकर छः ही आहुतियों का प्रक्षेप 'षडाहुतिहोम' कहा जाता है—शङ्कर।

पल्लव होम किये जा रहे थे। महामायूरी[1] का पाठ हो रहा था। गृह-शान्ति का सम्पादन हो रहा था। भूतों से रक्षा के लिए किया जाता बलिविधान समाप्त हो रहा था। संयमी विप्र वेद-पाठ प्रारम्भ कर चुके थे। रुद्र एकादशी[2] के जप से शिव-गृह गूँज रहा था। अतिशुचि शैव शिव को सहस्र-सहस्र कलशों से नहला रहे थे। स्वामी के दर्शन न पाने से दुखी हो नरपति आँगन में बैठे-बैठे दिन और रातें बिता रहे थे, भीतर से निकले (राजा के) निकटवर्ती परिजन उन्हें (राजा का) समाचार बता रहे थे, उन (नरपतियों) का स्नान, भोजन और शयन नाममात्र का ही होता था; अपना संस्कार[3] छोड़ देने से उनका वेश मलिन हो गया था, और वे चित्र की भाँति निश्चल थे। दुख से उदासमुख हो बाहरी परिजन बाहरी प्रकोष्ठ में मण्डल बाँधकर धीरे धीरे राजा की दारुण अवस्था का वर्णन कर रहे थे। कोई चिकित्सक के दोष बता रहा था, कोई असाध्य व्याधि के लक्षणों के पद पढ़ रहा था। कोई बुरे स्वप्न कह रहा था। कोई पिशाच की बात कर रहा था। कोई दैवज्ञ (ज्योतिषी) के आदेश प्रकाशित कर रहा था। कोई उत्पातों का वर्णन कर रहा था। कोई अनित्यता पर विचार कर रहा था, संसार को दोष दे रहा था, कलि-काल की करतूतों की निन्दा कर रहा था और

१—बौद्ध-विद्या, किसी किसी के अनुसार शैव-मन्त्र—शङ्कर।

२—शिव-मन्त्र।

३—शरीर केश आदि साफ करना, सिंगार करना।

दैव को उलाहना दे रहा था। दूसरा धर्म पर रोष कर रहा था और राजकुल के देवताओं को दोष दे रहा था। तीसरा क्लेश में पड़े कुल-पुत्रों के भाग्य की निन्दा कर रहा था।

अविरल अश्रु-जल से परिपूर्ण नेत्रों से पिता के परिजन ने हर्ष को देखा। उबलते हुए रस-विशेष, मक्खन और तेल की गन्ध को, जो विविध औषधियों के रस की गन्ध से युक्त थी, सूँघता हुआ वह तीसरी कक्षा के भीतर पहुँचा।

धवल-गृह अत्यन्त निःशब्द था। देहली पर बहुत से द्वार-पाल खड़े थे। तिगुने पर्दे से भीतर जाने का रास्ता ओझल हो गया था। भीतरी गुप्त द्वार बन्द था। किवाड़ों का बजना रोक दिया गया था। बन्द खिड़कियों से हवा रोक दी गई थी[1]। परिचारक पीड़ित हो रहे थे। पैरों की चोट से बोलती सीढ़ियों से प्रतीहार प्रकुपित होते थे। शब्द-रहित इशारे से सभी कामों के लिए आदेश दिया जा रहा था। कवच-धारी कुछ दूर पर बैठे थे। कोने में खड़े आचमन-जल रखनेवाले पुकारे जाने से ही चकित हो जाते थे। चन्द्र-शालिका[2] में प्रति-

१—अथवा "नवनिर्मित गवाक्षों से हवा की रक्षा होती थी"—कैलाशचन्द्र दत्त।

२—प्रासाद पर का कमरा। यहाँ चन्द्र-किरणें अधिक अबाध गति से आती होंगी; इसी लिए शायद इसका नाम 'चन्द्रशालिका' या 'चन्द्रशाला' हुआ।

खिन्न लोग चुपचाप बैठे थे। बड़ी आधियों से पीड़ित बान्धव-अङ्गनाएँ निर्जन वातायनों पर पड़ी थीं। आँगन में उद्विग्न परिजनों का ढेर लग गया था। कुछ ही स्नेही लोग भीतर पहुँचे हुए थे। गम्भीर ज्वर के आरम्भ होने से भिषक भीत थे। मन्त्री चिन्तित हो रहे थे। पुरोहित व्यथित हो रहे थे। बान्धवों को क्लेश हो रहा था। पण्डित सो रहे थे[1]। विश्वस्त सामन्त संतप्त थे। चँवर डुलानेवाले का चित्त सूना था। शिरोरक्षक दुख से दुबले हो गये थे। (राजा के) प्रिय पात्रों का मनोरथरूपी धन[2] क्षीण हो रहा था। स्वामि-भक्ति के कारण आहार छोड़ने से बलहीन प्रिय राजा विकल थे। सारी रात जगने से राजाओं के पुत्र धरती पर पड़े हुए थे। परम्परा से आये कुल-पुत्र शोकाकुल थे। कञ्चुकी[3] शोक से संकुचित हो गये थे। चारण निरानन्द हो गये थे। निकटवर्ती निराश सेवक लम्बी साँसें ले रहे थे। ताम्बूल छोड़ देने से वाराङ्गनाओं के अधर धूसर हो गये थे। पाकशाला के अध्यक्ष घबड़ाये हुए वैद्य द्वारा बताये जाते पथ्य के बनाने में लगे थे। सेवक ऊपर उठाये हुए जल-पात्रों से वारिधारा पी रहे थे, जिससे उनका मुँह सूखने का रोग दूर हो रहा

१—जप होम आदि करने में सारी रात जगने से वे सो रहे थे।

२—या अभिलाषा-पूर्ति।

३—अन्तःपुरचारी वृद्ध विप्र।

था[१]। राजा के इच्छानुसार खूब खानेवाले खिलाये जा रहे थे। समग्र व्यवहारी भेषज की सामग्रियाँ जुटाने में व्यग्र थे। बार-बार पानी (पिलाने) वाले के बुलाये जाने से रोगी की घोर पिपासा का अनुमान लगता था। बर्फ से घिरे बर्तन में मक्खन वाला दूध ठण्डा किया जा रहा था। सफेद और गीले कपड़े में रखे कपूर से अञ्जन-शलाका शीतल की गई थी। गीले कीचड़ से लिपे नये घड़े में कुल्ला करने का मट्ठा रखा था। कमल के गीले और कोमल पत्तों से मृणाल ढके थे। वह स्थान, जहाँ जल पीने के पात्र थे, नालवाले नीले कमलों के फूलों से युक्त था। उबाला हुआ जल धारानिपातों[२] से ठण्डा किया जा रहा था। लाल चीनी से तेज सुगन्धि निकल रही थी। मचान पर बालू की बनी सुराही रक्खी थी, जिस पर रोगी की आँखें लगी थीं। सरस शेवल से लपेटा सुराखदार घड़ा भर रहा था। मणिमय कटोरे में लावे का सत्तू चमक रहा था। पीले रत्न के बर्तन में सफेद चीनी रक्खी हुई थी। शिशिर औषधियों के रस और चूर्ण से ढेर के ढेर स्फटिक, शुक्ति और शङ्ख भरे थे। पुराना आँवला, मातुलुङ्ग,

१—इस वाक्य में 'पीयमान' की जगह 'पाय्यमान' पढ़ने से अच्छा अर्थ निकलेगा—सेवक ऊपर उठाये हुए जलपात्रों से (राजा को) वारि-धारा पिला रहे थे, जिससे उसका मुँह सूखने का रोग दूर हो रहा था।

२—धार गिराकर, एक बर्तन से दूसरे में डालकर।

द्राक्षा, दाडिम आदि फल प्रचुर परिमाण में सञ्चित किये गये थे। दक्षिणा पाये हुए ब्राह्मण शान्ति-जल की बूँदें छिड़क रहे थे। दासी द्वारा पीसे जाते ललाट-लेप से शिला संलिप्त थी।

उसने ऐसे ही धवलगृह में स्थित पिता को देखा। ज्वर की आग से परलोक-विजय के लिए मानो उसका नीराजन किया जा रहा था। निरन्तर करवट बदलने से तरंगित शय्या पर वह छट-पटा रहा था, जैसे क्षीरसागर में विष की गर्मी से शेष छटपटाता हो। मोतियों के चूर्ण से धवल हुआ[1] वह क्षय-काल में समुद्र के समान सूख रहा था। काल उसे उसी तरह उठा रहा था, जैसे कैलास को दशानन। निरन्तर चन्दन-लेप करनेवाले परिचारक अपने धवल हाथों से, जिनका भीतरी भाग अत्यन्त उष्ण अवयवों के सम्पर्क से मानो भस्म हो गया था, उसे स्पर्श कर रहे थे। वह परलोक के लिए प्रस्थान कर रहा था और पीछे रहनेवाले चन्दन-लेप के वेष में उसका स्थायी यश उसे आलिङ्गन कर रहा था। कमल, कुमुद, और इन्दीवर के पत्ते उसके शरीर पर निरन्तर दिये जा रहे थे, मानो काल के गिरते हुए कटाक्षों से उसका शरीर रंग-बिरंगा हो रहा था। दृढ़ दुपट्टे से उसके केशान्त बँधे थे, जिससे शिरोवेदना का सातत्य प्रकट हो रहा था। असह्य वेदना से उसके कपालपट से नीला नाड़ी-जाल निकल रहा था, मानो काल के हाथ की अंगुलियों से रेखाएँ खींची जा रही थीं, जिनसे जीवन के शेष

१—समुद्र के पक्ष में—मोतियों और बालू से धवल।

दिवसों की संख्या सूचित हो रही थी; ऐसे विकराल कपाल-फलक से वह भय उत्पन्न कर रहा था। मानो समीपवर्ती यम के दर्शन से हुए उद्वेग से उसकी आँखों की पुतलियाँ कुछ भीतर घुस गई थीं। सूखे दाँतों से निकलती धूसर किरणों से तरंगित उष्ण निश्वास-परम्परा मृग तृष्णा के समान लगती थी। काली होती जीभ, जो मानो खूब गर्म साँसों से जल गई थी, दारुण सन्निपात का आरम्भ बता रही थी। छाती पर स्थापित मणि, मौक्तिक-हार, चन्दन तथा चन्द्रकान्त से वह अपने को यमदूत के देखने के योग्य बना रहा था। अङ्गों को तोड़ने मरोड़ने में उसकी भुजाएँ ऊपर उठ गई थीं और हाथ के नखों की किरणें फैल गई थीं, जान पड़ता था जैसे वह ताप-शान्ति के लिए धारागृह (फुहारा) बना रहा हो। अत्यन्त निकटवर्ती जल, मणिमय तल तथा दर्पणों के भीतर पड़ते अपने प्रतिबिम्बों से भी वह संतापातिशय बता रहा था[1]। स्पर्श करनेवाली प्रणयिनी की भाँति विश्वस्त मूर्च्छा को वह खूब मानता था। भीत वैद्यों द्वारा देखे गये दुर्लक्षणों से, मानो यम के पुकारने के अक्षरों से, वह आविष्ट था। महाप्रस्थान के समय वह आप्त व्यक्तियों (स्वजनों) के हृदयों में अपने संतापों का संचार कर रहा था। अरति ने उसे ग्रहण कर लिया था, इसलिए कान्ति मानो ईर्ष्या से उसे छोड़ रही थी। वह उपद्रवों का उद्योगस्थान था। क्षामता उस पर सभी अस्त्र छोड़ रही थी। निस्सहायता ने

१--जल आदि शीतल चीजों में प्रवेश करने के कारण।

उसे वश कर लिया था। विषमता ने उसे अपना विषय, क्षय ने अपना क्षेत्र, और ग्लानि ने अपना गोचर बना लिया था। दुःख ने डस लिया था। अस्वास्थ्य ने अपना लिया था। व्याधि ने आयत्त कर लिया था। काल ने क्रोड़ बना लिया था। (यम की) दक्षिण दिशा ने लक्ष्य बना लिया था। पीड़ाओं ने पी लिया था। जागरण ने खा लिया था। विवर्णता उसे निगल गई थी। गात्र-भङ्ग ने उसे ग्रास बना लिया था। विपत्तियाँ उसे हरण कर रही थीं। वेदनाएँ उसे विभक्त कर रही थीं। दुःख लूट रहे थे। दैव उसे लेना चाहता था। नियति ने (लेने का) निश्चय कर लिया था। अनित्यता ने सूँघ लिया था। अभाव अभिभूत कर रहा था। मृत्यु उसे पकड़ रही थी। वह क्लेश को स्थान दे चुका था। वह उदासी का निवास था। वह काल के समीप, अन्तिम साँस के निकट, महाप्रवास के आरम्भ में, लम्बी नींद के द्वार पर और यम की जीभ के आगे वर्तमान था। वह बोलता कम था। उसका चित्त चलायमान था और शरीर विवश था। उसकी आयु क्षीण हो गई थी। वह बड़बड़ाता बहुत था। साँसे लगातार ले रहा था। जँभाइयों ने उसे जीत लिया था। आधियों ने पराधीन बना दिया था। मूर्च्छा-पिपासा-आदि पीड़ाओं ने बाँध लिया था।

हर्ष के पिता के पास देवी यशोवती बैठी थी। अनवरत रोने से उसकी आँखें फूल गई थीं। चँवर लिये रहने पर भी साँसों से ही वह व्यजन डुला रही थी। विविध औषधियों की धूल से उसका शरीर धूसर हो गया था। बार बार "आर्यपुत्र,

सो रहे हो ? ” कहती हुई वह उसके शिर और छाती को छू रही थी।

पिता को देखकर दुःख के प्रथम सम्पात से हर्ष की मति मथ गई और वह भाग्य के प्रति आशङ्कित-सा हुआ। पिता को तो उसने यमपुर में ही वर्तमान माना। क्षणभर के लिए वह विवेक से बहिष्कृत हो गया। उसका धैर्य विचलित हो गया। क्षोभ ने उसे अपना क्षेत्र बना लिया। वह आनन्द से रहित हो गया। विषाद ने उसे अपना विषय बना लिया। उसका हृदय मानो पावकमय हो गया। उसकी मूर्छित होती इन्द्रियाँ मानो विषम विष से दूषित हो गई थीं। अन्धकार में पाताल को भी और सूनापन में आकाश को भी वह मात कर रहा था। वह 'किंकर्तव्यविमूढ' हो गया। उसने हृदय से भय का और मस्तक से पृथ्वी का स्पर्श किया।

दूर से ही परमप्रिय पुत्र को देखकर अवनिपति उस अवस्था में भी अतिशय स्नेह के वश हो मन से दौड़ता हुआ भुजाओं को फैलाकर “आओ आओ” कहकर पुकारता हुआ आधे शरीर से शयन से उठ गया। सत्वर समीप आये उस विनयावनत (पुत्र) को बलपूर्वक उठाकर छाती से लगा लिया; जान पड़ा जैसे वह सप्रेम चन्द्रमण्डल के बीच घुस रहा हो, अमृतमय सरोवर में डुबकी लगा रहा हो, हरिचन्दन रस के बड़े झरने में नहा रहा हो या हिमालय के जल से अभिषिक्त हो रहा हो। पलकों से युक्त तथा

आँसू बरुनियों की नोकों में गुँथ गये थे, मूँदते हुए नेत्र का

संताप भूलकर उसने देर तक आलिङ्गन किया। देर के बाद किसी किसी प्रकार छुटकारा पाने पर हटकर राजकुमार ने नमस्कार किया। फिर माता को प्रणाम कर निकट आया और शय्या के समीप बैठ गया। पिता निर्निमेष तथा निश्चल नेत्रों से उसे मानो पीता रहा। उसने बार बार काँपते पाणि-तल से उसका स्पर्श किया। रोग के कारण क्षीण हुए कण्ठ से कठिनाई से वह बोला—"वत्स, दुबले हो गये हो।" भण्डि ने कहा—"देव, इन्हें भोजन किये आज तीसरा दिन हो गया।"

यह सुन लम्बी साँस लेकर अश्रु-वेग से रुकते शब्दों में उसने किसी किसी तरह कहा—"वत्स, जानता हूँ कि तुम पितृ-प्रिय हो और तुम्हारा हृदय अत्यन्त मृदु है। अत्यन्त बलवान् तथा सर्व-क्लेश-प्रद स्वजन-स्नेह ऐसे दुर्योगों में धीरों की भी बुद्धि को विकल कर देता है। अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। उद्दाम दाह ज्वर से जलकर भी मैं तुझ दीर्घायु की इस मानसिक पीड़ा से अधिकतर जल रहा हूँ। तुम्हारी दुर्बलता तेज शस्त्र की तरह मुझे काट रही है। मेरा सुख, राज्य, वंश, और प्राण तुम में स्थित है और जैसे मेरा वैसे ही सभी प्रजाओं का। तुम-सरीखों की पीड़ा सकल भुवन को पीड़ित करती है। आपसरीखे (महापुरुष) अल्पपुण्य-वालों के वंश को अलङ्कृत नहीं करते। अनेक पिछले जन्मों में उपार्जित पुण्यकर्मों के तुम फल हो। तुम्हारे लक्षण कह रहे हैं कि चारों समुद्रों का आधिपत्य तुम्हें करतलगत-सा है। तुम्हारे जन्म से ही मैं कृतार्थ हूँ। जीने की अभिलाषा मुझे नहीं है। (केवल) वैद्य

का अनुरोध मुझे दवा पिला रहा है। और भी, सभी प्रजाओं के पुण्यों से सकल भुवन पालने के लिए उत्पन्न होने वाले आप-सरीखों के माता-पिता जन्म-ग्रहण के उपायमात्र हैं। राजाओं के बन्धु तो प्रजा हैं। इसलिए उठो और सभी क्रियाएँ करो। तुम्हारे आहार करने पर ही मैं भी स्वयं पथ्य खाऊँगा।"

इतना कहे जाने पर शोकानल उसके हृदय को इस तरह जलाने लगा जैसे भस्म कर डालेगा। क्षण भर रहकर पिता से भोजन करने के लिए फिर भी आदेश पाकर वह धवल गृह से उतर गया और सोचने लगा—"यह महाप्रलय असमय में ही उपस्थित हुआ, जैसे बिना बादल के वज्रपात हुआ हो। सामान्य शोक भी मरण है जब केवल साँसें चलती रहती हैं, महाव्याधि है जिसके लिए औषधि नहीं बताई जा सकती, अग्नि-प्रवेश है जो भस्म नहीं कर सकता, जीवन में ही नरक-वास है, बिना ज्योति के ही अङ्गार-वृष्टि है, आरे से चीरना है जो टुकड़ा नहीं कर सकता, वज्र की बनी सूई की चोट है जो घाव नहीं कर सकती। विशेष शोक का कहना ही क्या है? अब मैं क्या करूँ?"

एक राजपुरुष के साथ अपने स्थान पर जाकर उसने कुछ ही कवल (ग्रास) ग्रहण किये। ये कवल मानो धूममय थे जिनसे अश्रुपात हुआ, मानो अग्निमय थे जिनसे हृदय में दाह पैदा हुआ, मानो विषमय थे जिनसे मूर्छा हुई, मानो महापापमय थे जिनसे घृणा उत्पन्न हुई, मानो लवणमय थे जिनसे वेदना हुई। कुल्ला करते समय उसने चँवर डुलानेवाले को आदेश दिया—"जान

आओ कि तात कैसे हैं।" वहाँ जाकर वह लौट आया और विदित किया "देव, तात वैसे ही हैं।" यह जानने पर बिना पान लिये ही सूर्यास्त होने के समय व्यथित चित्त से सभी वैद्यों को एकान्त में बुलाकर विषण्ण हृदय हो उनसे पूछा—"वैद्यगण, ऐसी अवस्था में क्या करना चाहिए ?" उन्होंने निवेदन किया—"कुछ ही दिनों में आप सुनेंगे कि आपके पिता फिर से प्रकृतिस्थ और स्वस्थ[1] हो गये।"

उन वैद्यों के बीच रसायन नामक एक वैद्य-कुमार था। वह पुनर्वसु का वंशज था। उसकी आयु लगभग अठारह वर्ष की थी। वह उसी राजकुल में वंश-परम्परा से आगत था। राजा ने पुत्र के समान उसका लालन किया था। स्वभाव से ही उसकी बुद्धि बड़ी पटु थी। वह अष्टाङ्ग[2] आयुर्वेद में निपुण हो गया था। वह व्याधि के स्वरूपों को ठीक ठीक जानता था। आँसू बहाता हुआ वह चुपचाप मुँह नीचे लटकाये था। राजकुमार ने पूछा—"मित्र रसायन, सच सच कहो यदि तुम कुछ भी अमङ्गल देख रहे हो।"

१—'प्रकृतिस्थ' और 'स्वस्थ' से 'मृत्यु को प्राप्त' भी सूचित होता है। "मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः" (रघुवंश)।

२—सुश्रुत ने आयुर्वेद के ये आठ अङ्ग बताये हैं:—(१) शल्य (२) शालाक्य (३) कायचिकित्सा (४) भूतविद्या (५) कौमारभृत्य (६) अगदतन्त्र, (७) रसायनतन्त्र (८) वाजीकरणतन्त्र।

उसने उत्तर दिया "देव, कल प्रातःकाल वास्तविक अवस्था बताऊँगा।"

इसी बीच घरेलू कमलों के रखवारे ने चकवे को आश्वासन देते हुए एक अपरवक्त्र जोर जोर से पढ़ा:—

"अपने मन को, हे पक्षी, स्वयं दृढ़ करो, और शोक छोड़कर विवेक-मार्ग पर चलो। कमलों की सरसी की शोभा के साथ सूर्य सुमेरु के शिखर पर आश्रय ले रहा है।"

यह सुनकर उस वचन निमित्त-ज्ञ ने पिता के जीने की आशा बिलकुल शिथिल कर दी। वैद्यों के चले जाने पर उसका धैर्य नष्ट हो गया। शाम को वह फिर से पिता के समीप गया। "बड़ी जलन है। हरिणि, हार लाओ। वैदेहि, मेरी देह पर मणिदर्पण रखो। लीलावति, हिम-कणों से ललाट पर लेप करो। धवलाक्षि, कपूर की बुकनी दो। कान्तिमति, आँख पर चन्द्रकान्त रखो। कलावति, कपाल पर कुवलय रखो। चारुमते, चन्दन का लेप करो। पाटलिके, कपड़े से हवा करो। इन्दुमति, अरविन्दों से दाह मन्द करो। मदिरावति, आर्द्र वस्त्र से प्रसन्न करो। मालति, मृणाल लाओ। आवन्तिके, तालवृन्त चलाओ। बन्धुमति, भागते हुए माथे को बाँधो। धारणिके, कन्धा धरो, कुरङ्गवति, छाती पर सशीकर कर रखो। बलाहिके, बाहु दबाओ। पद्मावति, पाँव दबाओ। अनङ्गसेने, अङ्ग दृढ़तापूर्वक पकड़ो। विलासवति, समय क्या है? नींद नहीं आ रही है, कुमुद्वति, कथा कहो।"— वहाँ वह पिता के ऐसे ही प्रलाप अनवरत सुनता रहा और व्यथित

हृदय से दुख से लम्बी लगती रात जग कर ही बिता दी। प्रातः-काल में वह (धवल गृह से) उतरा। अश्वपाल एक घोड़ा ला रखा था और द्वार की ओर बढ़ रहा था; किन्तु वह पैदल ही अपने स्थान पर आया। वहाँ जल्दी से उसने भाई के आने के लिए द्रुत-गामी दूतों और तेज ऊँटवानों को रह-रहकर भेजा। मुँह धोकर उसने परिजन द्वारा लाई गई सिंगार की चीजें भी नहीं लीं। उसने सामने खड़े उदास राजकुमारों की 'रसायन, रसायन' यह अव्यक्त बोली सुनी और उसने पूछा "भद्र, क्या रसायन?" यह पूछे जाने पर वे सब एक साथ चुप हो गये। बार बार अनुरोध किये जाने पर उन्होंने दुख से किसी किसी प्रकार कहा—"हे देव, (रसायन) अग्नि में प्रवेश कर गया।" यह सुन भीतरी ताप से मानो जलकर वह उसी समय विवर्ण हो गया। उच्छिन्न होते शोकान्ध हृदय को वह धारण नहीं कर सका। उसने सोचा "कुलीन जन स्वयं न होना[1] पसन्द करता है, किन्तु नीच की भाँति अप्रिय और दुःखद बात नहीं सुनाता। विपत्ति में इसने जो अग्निप्रवेश का अनुष्ठान किया है, उससे तो इसकी सुन्दर कुलीनता उसी तरह और भी उज्ज्वल हो गई है जैसे आग में तपाये जाने से विशुद्ध जाति का सोना।" फिर भी उसने सोचा—"अथवा यह स्नेह के अनुकूल ही हुआ। क्या मेरा पिता इसका पिता नहीं? या क्या मेरी माता इसकी

१—न होना = मर जाना।

अम्मा नहीं ? क्या हम इसके भाई नहीं ? अन्य स्वामी के भी मरते समय प्राण धारण करना इस संसार में लाज का कारण होता है; प्रात-स्मरणीय पिता का तो कहना ही क्या, अनुजीवियों के लिए जो अमृतमय और निष्कपट बन्धु है और जिसकी प्रसन्नता सफल होती है। सम्प्रति अपने को जलाकर इसने उचित आचरण किया है। अथवा कल्प तक रहनेवाले इस यशोमय का जल ही क्या सकता है ? वह केवल आग में गिरा। जले तो हम। धन्य है पुण्यवानों का वह अग्रणी। अपुण्यात्मा तो यह राजकुल ही है, जो वैसे कुल-पुत्र से विलग हो गया। और भी, मेरे इन प्राणों का क्या कार्य-भार है, क्या करना रह गया है, अथवा कौन-सा कार्य-नियोग है, जो अब भी ये निष्ठुर प्राण प्रस्थान नहीं करते। कौन-सा विघ्न है, जो यह हृदय सहस्रधा विदीर्ण नहीं हो जाता ? इस तरह दुखार्त हो वह राज-भवन नहीं गया। उसने सभी कार्य छोड़ दिये। चादर से मस्तक-सहित अपने को ढककर वह शयन पर पड़ रहा।

देव हर्ष की अवस्था ऐसी होने पर और राजा की वैसी, सभी लोगों के गालों में हाथ मानो काँटी की तरह गड़ गये। आँखों में मानो अश्रु-प्रवाह का लेप हुआ। नाकों की नोकों पर दृष्टि मानो गथ गई। रोने की ध्वनि मानो कानों में उत्कीर्ण हो गई। जीभों पर 'हा कष्ट' के शब्द मानो सहज हो गये। मुहों में मानो साँसें पल्लवित हो गईं। होठों पर विलाप के पद मानो लिखित हो गये। दुख हृदयों में मानो पुञ्जीभूत हो गये। नींद मानो गर्म

आँसुओं के दाह से डरकर आँखों के भीतर नहीं आई। साँसों की हवा में बहकर हँसी मानो विलीन हो गई। सन्ताप से मानो निःशेष जलकर वाणी बढ़ नहीं सकी। कथाओं में भी परिहास नहीं सुन पड़े। जान पड़ा कि गीत-गोष्ठी कहीं चली गई। नाचें इस तरह विस्मृत हो गईं, जैसे वह पिछले जन्मों की बीती बातें हों। स्वप्न में भी सिंगार की सामग्रियाँ नहीं छुई गईं। उप-भोग की बात तक नहीं हुई। भोजन का नाम तक नहीं लिया गया। (मद) पान करनेवाली मण्डली आकाश-कुसुम हो गई। चारण के वचन मानो अन्य लोक में चले गये। सुख मानो किसी दूसरे युग के हो गये। मदन मानो पुनः शोकाग्नि से जला। दिन में भी शयन नहीं छोड़े गये। धीरे धीरे महा-पुरुष-विनाश-सूचक बड़े बड़े बहुतेरे उत्पात एक ही साथ चारों ओर संसार में दीख पड़े, जिन से लोगों को राजा के न रहने का डर हुआ।

उसी प्रकार पहले, काँपते हुए सभी कुल-पर्वतों-सहित, धरती मानो पति के साथ जाने की इच्छा से चलायमान हुई। परस्पर टकराने से बोलती तरंगों से मानो इस (विपत्ति के) अवसर पर धन्वन्तरि[1] का स्मरण करते हुए समुद्र क्षुभित हुए। धूमकेतु ऊपर उठ आये, जो भावी राज-विनाश से भीत दिशाओं के उन केश-पाशों के समान थे, जो फैले हुए मोर-पुच्छों की तरह लम्बे

१—धन्वन्तरि समुद्र-मन्थन के समय ही समुद्र से बाहर हो गये थे।

और कुटिल लगते थे[1]। धूमकेतुओं से दिशाएँ विकराल हो गईं, मानो दिक्पालों द्वारा आरम्भ किये गये आयुष्काम होम[2] के धुएँ से धूमिल हो गईं। तपाये हुए लोहे के घड़े के समान लाली लिए हुए भूरे सूर्यमण्डल में भयङ्कर कबन्ध दीख पड़ा, मानो राजा की प्राण-रक्षा के किसी इच्छुक ने पुरुष का उपहार दिया। अपनी परिधि प्रज्वलित होने से चन्द्रमा चमकीला हो गया, मानो ग्रहण करने की इच्छा से जँभाई करते हुए राहु के डर से उसने आग की दीवार बना ली थी। अनुरक्त दिशाएँ जल उठीं, मानो राजा के प्रताप से अलङ्कृत होकर वे पहले ही आग में प्रवेश कर चुकीं। रक्त-विन्दुओं की झड़ी से वसुधा-वधू लाल हो गई, मानो लाल रेशमी कपड़े से ढक गई। राज-विनाश से होनेवाले उद्वेग से भीत लोकपालों ने काले लोहे के किवाड़-स्वरूप अकाल के काले बादलों से मानो दिशाओं के द्वार बन्द कर दिये। हृदय-विदारी तूफानों के घोर गर्जन बढ़ने लगे, मानो यम की यात्रा के समय बजाये जानेवाले गम्भीर ध्वनि वाले नगारे बजे। ऊँटों के बाल की तरह भूरे धूल-पटल ने, जो मानो निकट होते यम-महिषों के खुर-पुटों से उठा था, आकाश को धूसर कर दिया। झुण्ड के झुण्ड सियाल मुँह ऊपर उठाकर आकाश से गिरती उल्काओं के

१—अथवा, जो फैले हुए ज्वाला-समूह के समान विशाल और कुटिल लगते थे।

२—आयु बढ़ानेवाला यज्ञ।

समान देख पड़ती अग्नि-ज्वालाएँ लेते हुए कड़वी बोली बोले। राज-मन्दिर में कुल-देवताओं की प्रतिमाओं के बालों की माँग से निकलते धुएँ से[1] दुख प्रकट हुआ, मानो उनके बिखरे हुए केश से शोक प्रकाशित हुआ। सिंहासन के समीप चञ्चल भौंरे मड़राये, जो काल-रात्रि की झुलती हुई कुटिल वेणी की शोभा धारण कर रहे थे। अन्तःपुर के ऊपर उड़ते कौओं की बोली क्षण भर के लिए भी बन्द नहीं हुई। कूजते हुए बूढ़े गीध ने श्वेत आतपत्र के बीच से चञ्चल चोंचद्वारा सरस मांस-पिण्ड के समान देख पड़ते लाल माणिक्य-खण्ड को, मानो राज्य के जीवन को ऊपर काट निकाला।

इन बड़े बड़े उत्पातों से दुखी हो राजकुमार ने किसी किसी तरह रात बिताई। दूसरे दिन यशोवती की प्रतीहारी, वेला, राजकुल से कुमार के पास चली। जल्द जल्द चलने से विशीर्ण होते गहनों से वह झङ्कार कर रही थी, मानो वह विषाद की विजयघोषणा बन रही थी। उसके अस्थिर पैरों की चञ्चल पैजनियों की ध्वनि सुनकर बोलती हुई घरेलू हंसियों ने गला उठाकर दूर से ही मानो पूछा—"क्या है ? क्या है ?" आँसुओं से अन्धी होकर गिरने से उसके विशाल नितम्ब पर करधनी बज उठी, इसके अनुकरण में बोलती हुई गृह-सारसियों ने मानो उसे रास्ता बताया। अनदेखे

१—माँग से धुआँ निकलना उत्पात है। धुआँ बिखरे हुए केश के समान लगता था।

किवाड़ की ठोकर लगने से फूटे हुए ललाट से निकले रुधिर-पटल से, मानो लाल रेशमी कपड़े के अञ्चल से, मुँह ढककर वह रोई। वह अपने बेत को, मानो संताप के वेग से पिघले हुए सुवर्ण कङ्कण के रस की धार को, फेंक रही थी। मुँह की हवा से हिलती हुई चमकती चादर को वह इस तरह खींच रही थी, जैसे अपनी केंचुली को साँपिन खींच रही हो। आनत कन्धों से लटकते, हवा में हिलते, खूब काले, और शोक के अनुकूल खुले चञ्चल केश-गुच्छ से, मानो तमाल की छाल के कपड़े से, उसके कुच ढके थे। वह बार बार अपने कर-किसलय हिला रही थी, जो स्तनों के पीटने की पीड़ा से फूल गये थे तथा इस तरह लाल और काले हो गये थे जैसे अत्यन्त गर्म आँसुओं के पोछने से जल गये हों। अपने कपोलों में प्रतिबिम्बित समीपवर्ती लोगों को, जो शोकाग्नि में प्रवेश करनेवाले थे, वह मानो अपने शीर्ण चक्षु-निर्झर[१] में नहला रही थी। चञ्चल आँखों की तरल किरणों से दिवस इस तरह श्याम हो गया, जैसे उसके दुख से जल गया हो। "कुमार कहाँ है? कुमार कहाँ है?" इस तरह लोगों से पूछती हुई वह आई। लोगों की विषण्ण आँखों से उसकी अगवानी हुई। निकट आकर उसने धरती के तल पर दोनों हाथ टेक दिये। मुँह नीचे कर दाँतों से निकलती किरणों से, सूखते हुए और कुछ-कुछ धूसर अधर को मानो सींचते हुए उसने निवेदन किया—"देव

१—टूटकर बूँदों में परिणत हुए आँखरूपी झरने में।

बचाओ बचाओ। स्वामी जीवित ही हैं कि रानी ने कुछ निश्चय कर लिया है।"

तब यह दूसरा (अशुभ) सुनने पर उसका धैर्य खो गया। वह दुख से गल गया, चिन्ता से ग्रस्त हो गया। ताप ने उसे तोल लिया, भय ने गोद में कर लिया। वह मूर्छित हो गया। होश होने पर उसने सोचा—"पत्थर पर बार बार पड़नेवाली लोहे की चोट की तरह, मेरे कड़े हृदय में दुखों का निपात आग पैदा करता है सही, किन्तु मुझ निर्दय की देह भस्म नहीं कर देता।" उठकर जल्दी से वह अन्तःपुर गया। वहाँ मरने को उद्यत रानियों के ये और ऐसे ही प्रलाप उसने दूर से ही सुने—"बेटा आम अपनी चिन्ता करो, तुम्हारी माँ अन्यत्र जा रही है। बच्चा जातिगुच्छ, जाती हूँ, मुझ से बिदा लो। बहिन भवन-दाड़िम-लता, मेरे विना आज तुम अनाथ हो रही हो। लाल अशोक, मेरे पाद-प्रहार[1] तथा कर्णफूल बनाने के लिए पल्लव तोड़ने के अपराध क्षमा करना। अन्तःपुर के बाल बकुल, मेरे पुत्र, तुम मदिरा के कुल्लों से सिञ्चित होकर दुर्विनीत हो गये हो, मैंने तुम्हें (अब तक) देखा। बच्ची प्रियंगुलतिका, मेरा गाढ़ आलिङ्गन करो, मैं तेरे लिए दुर्लभ हो रही हूँ। गृह-द्वार पर के भद्र आम, पितृ-तर्पण में जलाञ्जलि देना, तुम मेरे अपत्य जो हो। भाई पिंजड़े के सुग्गे, भूलना नहीं, क्या कहते हो? मैं तुमसे दूर

१—स्त्रियों के पैर की चोटों से अशोक खिलता है और मदिरा के सिञ्चन से बकुल।

हो रही हूँ। मैना, स्वप्न में फिर हमारा समागम हो। भाई घरेलू मोर को, जो मेरा रास्ता रोक रहा है, किसे सौंप दूँ? माता, इस हंस-मिथुन का सुत के समान लालन करना, मैं मंदपुण्या हूँ जो इस चक्रवाक-युगल का विवाहोत्सव नहीं सम्पादन कर सकी। मातृ-वत्सल घरेलू हरिणी, लौट जाओ। कञ्चुकी, मेरी प्रिय वीणा लाओ तो मैं उसे आलिङ्गन करूँ। चन्द्रसेना, इस व्यक्ति को अच्छी तरह देख लो। विन्दुमति, यह तुम्हारी अन्तिम बन्दना है। चेटि, पाँव छोड़ो। आर्या कात्यायनिका[१], क्यों रोती हो? दैव मुझे ले जा रहा है। तात कञ्चुकी, मुझ अलक्षणा की प्रदक्षिणा क्यों करते हो? धाई, अपने को धरो, पैरों पर क्यों पड़ती हो? मुझ अपश्चिमा[२] का गला पकड़ो। हा कष्ट, मैं प्रियसखी मलयवती को न देख सकी। कुरङ्गवती, यह विदा की अञ्जलि है। सानुमती, यह अन्तिम प्रणाम है। कुवलयवती, यह तेरा आखिरी आलिङ्गन है। सखीगण, प्रणय-कलह क्षमा करना।"

इन प्रलापों से उसके कान जलने लगे। भीतर जाते ही उसने माता को बाहर निकलते देखा। वह अपनी सभी सम्पत्ति दान कर चुकी थी। मरणकाल के भूषण धारण कर चुकी थी। जानकी की भाँति वह पति के सामने अग्नि में प्रवेश करनेवाली थी। तुरंत नहाने से उसकी देह आर्द्र थी, जैसे भगवती लक्ष्मी तत्क्षण समुद्र से उठी हो। वह कुसुम्भ फूल के समान दो लाल वस्त्र पहने थी,

---

१—काषाय वस्त्र पहननेवाली बूढ़ी विधवा।

२—फिर से नहीं आनेवाली।

जैसे आकाश की दो सान्ध्य आभाएँ हों। उसकी देह पर रेशमी चादर के समान अविधवा मरण-चिह्न लगे थे, जो पान खाने से कुछ कुछ श्यामल हुइ अधर-प्रभा के पड़ने से लाल हो रहे थे। उसके कुचों के बीच लाल कण्ठ-सूत लटक रहा था, जिससे फूटे हुए हृदय से निकली रुधिर-धारा की आशङ्का हो रही थी। उसका हार, जिसका सूत टेढ़े और कुटिल कुण्डल की नोक से खिंच गया था, सफेद रेशमी कपड़े की फाँस की तरह उसके गले में तकलीफ पैदा कर रहा था। उसकी देह कुङ्कुम से लिपी थी, मानो चिता की आग, जलाने की इच्छा से, उसे ग्रस चुकी थी। चिता की आग पूजने के फूलों के समान उजले उजले अश्रु-विन्दुओं से वह अपना अञ्चल भर रही थी, मानो गृह-देवताओं से विदाई लेने के उपहार में पद पद पर गिरते कङ्कण बिखेर रही थी। उसके गले में पैरों के आगे तक सूतों में गुथी फूलों की माला लटक रही थी, मानो वह यम के झूले पर चढ़ी हुई थी। उसके कान पर का कमल, जिसके भीतर भौंरे गूँज रहे थे, लोचन-कमल से मानो बिदा की बातें कर रहा था। रत्नों के बने नूपुरों के बन्धु घरेलू हंस मण्डल बाँधकर मानो उसकी प्रदक्षिणा कर रहे थे। जैसे उसका चित्त, जिस में उसका प्राण-सदृश (पति) रखा हुआ था, मरने के लिए अविचल था, वैसे ही एक चित्र-फलक, जिसमें उसके पति का चित्र बनाया हुआ था, उसके हाथ में अडिग था। पतिव्रता की पताका के समान पति की प्रिय प्रासयष्टि का[1], जिसकी चारों ओर पूजा की भावना से

१—एक तरह का अस्त्र।

उजले फूलों की उड़ती हुई माला बँधी थी, उसने आलिङ्गन किया। अपने चरित्र के समान सफेद शाही छाते के सामने, जैसे अपने बन्धु के सामने, उसने आँखों से आँसू बहाये। उसने सचिवों को आदेश दिया, जिसे स्वामी के पैरों पर पड़ने से अधिकाधिक निकलते अश्रु-प्रवाह से आखें बन्द हो जाने के कारण उन्होंने कठिनाई से समझा। अनुनयपूर्वक लौटाये गये दुखी वृद्ध बन्धुओं के रोने से बढ़ते हुए घर के क्रन्दन से उसके कान आकृष्ट हुए। पति की बोली के समान पिंजड़े के सिंह के गर्जन ने उसका हृदय हर लिया। उसकी धाई और अपने पति-भक्ति ने उसे भूषित किया। एक बूढ़ी और मूर्छा, दोनों ही परिचितों ने, उसे सहारा दिया। सखी और पीड़ा, विपत्ति के दोनों साथियों ने, उसे आलिङ्गन किया। वह परिजन और संताप से घिरी थी, जिन्होंने उसके सभी अवयवों को पकड़ रखा था। बड़े बड़े कुल-पुत्रों ने उसे घेर लिया था। वह लम्बी साँसें छोड़ रही थी। बूढ़े कंचुकी उसके पीछे पीछे आ रहे थे। उसका दुख बहुत बढ़ गया था। राजा के प्रिय कुत्तों को भी उसने आँसू-भरी आँखों से देखा। वह सौतों के भी पाँव पड़ी। चित्रित पुतरियों से भी उसने बिदा ली। घरेलू चिड़ियों के भी सामने उसने हाथ जोड़े। पशुओं से भी उसने बिदा माँगी। घर के पेड़ों से भी वह लिपटी।

माता को देखकर उसकी आँखें डबडबा आईं और दूर से ही उसने कहा—"माँ, तुम भी मुझ अल्पपुण्य को छोड़ रही हो। प्रसन्न होओ। लौट जाओ।" यह कहता हुआ ही वह सस्नेह पाँवों पर पड़

गया और नूपुर के रत्नों की किरणों से उसकी चूड़ा चुम्बित होती रही। जब उसका प्रिय कनिष्ठ पुत्र उदास होकर पैरों पर उसी तरह शिर रखे रहा, तब देवी यशोवती पहाड़ के समान भारी दुख से दब गई और मूर्छारूपी गाढ़ अन्धकार में, मानो रसातल में, घुसने लगी। अश्रु-प्रवाह के समान देर तक बन्द रखने से पुञ्जीभूत स्नेह पूर्णरूप से उमड़ आया और कोशिश करने पर भी वह आँसुओं का गिरना रोक नहीं सकी। कुचों में उत्कट उत्कम्प होने से शोक प्रकट हुआ। गला गद्गद् हो जाने से वह विकल थी। असाधारण दुख होने से उसका होंठ काँप रहा था। उसकी नाक बार बार फड़क रही थी। आँखें बन्द कर आँसुओं की बाढ़ से उसने विमल कपोलों को प्लावित किया। अपने चन्द्रमुख को कुछ ऊपर उठाकर रेशमी कपड़े के अंचल से ढक लिया, जो (अञ्चल) हाथों के नखों की किरणों से इस तरह खचित था, जैसे उसके बारीक छेदों से आँसू का सोत निकल रहा हो। उसका मन दुखी हो गया और उसके स्तन चूने लगे। प्रसव-दिवस से लेकर इस अङ्कशायी का समूचा शैशव उसे याद आ गया। फिर, उसका चित्त स्वजनों के यहाँ चला गया और प्राकृत प्रमदा की भाँति वह देर तक मुक्तकण्ठ से रोई। "माता, पिता, मरने को तैयार मुझ पापिन और इस तरह अत्यन्त दुखिनी को मत देखो" इस प्रकार रो रोकर माता और पिता को बार बार पुकारा। "हा वत्स, मैं अभागिन तुम्हें न देख सकी" इस तरह दूर में स्थित प्रिय ज्येष्ठ पुत्र के लिए रोई। "तुम अनाथ हो गई" यह कहती हुई ससुराल में रहनेवाली बेटी के लिए

शोक किया। "निष्करुण, इस व्यक्ति ने तुम्हारा क्या अपराध किया?" यह कहती हुई दैव को उलाहना दिया। "कोई भी स्त्री मेरे समान दुखिनी नहीं है।" इसी तरह भाँति भाँति से अपनी निन्दा की। "निष्ठुर, तुमने मुझे लूट लिया" इस तरह सहसा यम को कूसा।

शोक का वेग शान्त होने पर उसने पुत्र को सस्नेह उठाया। रोते हुए पुत्र की आँखें मानो द्रवीभूत होकर अधिकाधिक झर रही थीं। माता ने अपने अपने हाथ से उसकी आँखें पोछीं, और पोछते समय पपनियों पर हाथ के नखों की किरणें इकट्ठी हो गईं। उसने बार बार भरती हुई अपनी आँखें भी पोछीं, जिनकी भीतरी सफेदी को गहरी लाली ने पी लिया था, जिनके कोने गर्म आँसुओं से फूल गये थे, जिनकी पपनियों पर उजले अश्रु-बिन्दु ताराओं की तरह शोभ रहे थे और जो आँसू की बारीक बूँदों की झड़ी से कातर थीं। तब शोक में लटकती अलक-लताओं को, जो आँसू से भीगे गालों पर लग गई थीं, उसने कानों के ऊपर चढ़ाया। ढीली होकर नीचे लटकती बालिका[१] में फँसी हुई टेढ़ी लटों को अलग हटाया। अश्रु-प्रवाह से पूर्ण गीले, कुछ नीचे गिरे हुए और तरंगित अञ्चल को हाथ से ऊपर उठाया। (आँसू से भीगे गालों पर) सटे रेशमी कपड़े की लाली की परिछाहीं जिस कुबड़ी दासी के लावण्य पर पड़ी

१—कान का एक गहना।

उस (दासी) ने राजहंसमुखवाले चाँदी के पात्र को झुकाया, जिससे निकले जल से रानी ने अपना मुख-कमल धोया। जन्म से गूंगा दास हाथ में धुला हुआ स्वच्छ रुमाल लिए था, जिससे रानी ने अपने हाथ पोंछे। निर्निमेष आँखों से देर तक बेटे का मुँह देखकर बार-बार लम्बी साँसे लेकर वह बोली "वत्स, तुम अप्रिय, निर्गुण या त्याज्य नहीं हो। मेरे थन के दूध के साथ ही तुमने मेरा हृदय पी लिया। किन्तु इस समय अतिशय स्वामि-भक्ति से आच्छादित मेरी दृष्टि तुम्हें नहीं देख सकती। और भी, पुत्र, मैं राज्य का उपकरण अकरुण लक्ष्मी या पृथ्वी नहीं हूँ, जिनका व्यसन अन्य पुरुषों को देखना है। मैं धर्म-धवल कुल में उत्पन्न हुई हूँ, कुल-कलत्र हूँ और मेरा धन मेरा चरित्र है। क्या तुम यह भूल गये हो कि सिंह की सिंही की भाँति मैं सौ सौ समरों में विजयी पुरुष-श्रेष्ठ की घरनी हूँ। मेरे समान वीर-जा, वीर-जाया वीर-जननी तथा पराक्रम-क्रीत स्त्री और कर ही क्या सकती है? तुम्हारे पराक्रमी पिता ने—भरत, भगीरथ और नाभाग के समान नरेन्द्र-श्रेष्ठ ने—मेरा पाणिग्रहण किया। सेवा में होड़ करनेवाली अनन्त सामन्तों की स्त्रियों ने सोने के घड़ों को उड़ेलकर इस शिर पर अभिषेक किया। इस ललाट को महारानी के पट्ट-बन्ध का मनोरथ-दुर्लभ सत्कार प्राप्त हुआ। तुम्हारे-जैसे पुत्रों ने इन स्तनों का पान किया, जिन स्तनों पर का चीनी रेशमी वस्त्र शत्रु-कलत्रों द्वारा डुलाए जाते चमरों की हवा में हिलता रहता था। मैंने सौतों के शिर पर ये चरण रखे, जिनकी पूजा राजधानी भर की कुटुम्बिनियों

ने प्रणाम करते समय अपने मुकुट पर की मणिमालाओं से की। इस प्रकार मेरे सभी अवयव कृतार्थ हुए; मेरे पुण्य क्षीण हो गये; अब और क्या अपेक्षा करूँ? अविधवा ही मरना चाहती हूँ। स्वामी के भस्म हो जाने पर आर्यपुत्र से रहित होकर रति की भाँति मैं निरर्थक प्रलाप नहीं कर सकती। तुम्हारे पिता की पाद-धूलि के समान पहले ही स्वर्ग जाकर उनके वहाँ आने की बात कहकर शूरानुरागिणी सुराङ्गनाओं से खूब सम्मानित हूँगी। अभी मैंने जो दारुण दुख देखा उससे दग्ध हो चुकी हूँ। अब यह अग्नि मेरा क्या जालयगी? इस समय मरने से जीवित रहना ही दुस्साहस होगा। पति-वियोग के इस शोकानल से, जिसका इन्धन अक्षय स्नेह है, यह अनल अतिशीतल है। जब कैलास तुल्य प्राणेश्वर प्रवास करने जा रहे हैं, तो इस पुराने तिनके के समान तुच्छ जीवन के लिए लोभ करना कहाँ तक उचित है? और भी, पुत्र, अगर नरपति के मरण की अवहेलना कर मैं महापापिन जीवित भी रहूँ, तो तुम्हारे राज्य के सुख मुझे स्पर्श नहीं करेंगे। दुख से दग्ध व्यक्तियों की भूति[१] अशुभ अप्रशस्त और निरुपयोग होती है। वत्स, इस लोक में मैं विधवाओं के यश से रहना चाहती हूँ, न कि शरीर से। इसलिए, तात अब मैं ही तुम्हें मनाती हूँ कि मेरे मनोरथ की प्रतिकूलता से मुझे फिर क्लेश न पहुँचाओ।" इतना कह वह पैरों पर गिर पड़ी।

१—रहना; भस्म

उसने सत्वर अपने दोनों पाँव हटा लिये और नीचे झुककर माता को, जिसका मस्तक धरती पर आ गया था, अपने दोनों हाथ से पकड़कर ऊपर उठा लिया। शोक की दुर्निवारता समझकर, कुलाङ्गनाओं के योग्य उसी काम को श्रेयस्कर मानकर, और उसका दृढ़ निश्चय जानकर वह चुपचाप अधोमुख हो गया। यह सच है कि स्नेह से कातर होने पर भी कुलीन व्यक्ति देश और काल के अनुरूप आचार का अभिनन्दन करता है।

देवी यशोवती ने भी बेटे का आलिङ्गन कर उसके शिर को सूँघा और अन्तःपुर से पैदल ही निकल गई। अन्तःपुर-वासियों के क्रन्दन से भरी दिशाओं ने मानो उसे रोकना चाहा, तथापि वह सरस्वती-तीर पर चली गई। वहाँ उसने स्त्री के स्वभाव के अनुकूल कातर दृष्टिपातों से, मानो लाल कमलों से अग्नि की पूजा की और जैसे चन्द्रमा भगवान् सूर्य में प्रवेश करता है, वैसे ही उसने अग्नि में प्रवेश किया।

हर्ष भी मातृ-मरण से विह्वल होकर बन्धुओं के साथ पिता के पास आया। और देखा कि पिता के प्राणों के व्यापार बहुत कम बच रहे हैं, आँखों के तारक घूम रहे हैं, और तारक-राज (चन्द्र) की तरह अस्त की अभिलाषा कर रहा है। वह असह्य शोक से अभिभूत हो गया। पितृ-स्नेह ने उसका धैर्य छुड़ा दिया। सकल दुर्मद महीपालों के मस्तकों से सेवित पितृ-पाद-पद्मों को आलिङ्गन किया और मानो बड़े बड़े बादलों से बनी आँखों से अत्यन्त स्वच्छ अश्रु-प्रवाह बरसाता हुआ वह साधारण आदमी की तरह मुक्तकण्ठ से

देर तक रोया। यह अश्रु-प्रवाह क्या था, मानो भीतरी ताप से पिघलता उसका मुख-चन्द्र था, मानो जल में परिणत होता उसके दाँतों का ज्योत्स्ना-जाल था, मानो उसकी आँखों का पिघलता लावण्य था, मानो उसके मुख से झरता सुधा-रस था।

राजा की आँखें बन्द हो रही थीं, तो भी अविरत रोने का शब्द कानों में पड़ने से उसे पहचान लिया और धीरे धीरे कहने लगा -'तुम्हें ऐसा नहीं होना चाहिये। आप-सरीखे पुरुष अधीर नहीं होते। लोगों का पहला अवलम्बन मनस्विता है और दूसरा राज-कुल। कहाँ आप मनस्वियों अर्थात् धीरों में श्रेष्ठ, सभी गुणों के आश्रय स्थान और कहाँ यह घबड़ाहट! 'कुल-प्रदीप हो' ऐसा कहना तुम्हें छोटा बनाना है, क्योंकि तुम तो सूर्य के सामन तेजस्वी हो। 'पुरुष सिंह हो' यह कहना तुम्हारी निन्दा है, क्योंकि तुमने तो शूरता और प्रखर प्रज्ञा से अपना पराक्रम बढ़ाया है। 'यह पृथ्वी तुम्हारी है' यह पुनरुक्त है; क्योंकि तुम्हारे लक्षण ही तुम्हारा चक्रवर्ती होना बता रहे हैं। 'लक्ष्मी को ग्रहण करो' यह विरोधात्मक वाक्य है; क्योंकि स्वयं लक्ष्मी तुम्हें ग्रहण कर चुकी है। 'इस लोक को स्वीकार करो' यह तुम्हारे लिए नाकाफी है, क्योंकि तुम दोनों लोक जीतने के इच्छुक हो। 'कोष स्वीकार करो, यह कहना निरुपयोग है, क्योंकि तुम चन्द्र-किरण-सदृश निर्मल यश सञ्चय करने में दत्तचित्त हो। 'राजाओं को अपनाओ' यह व्यर्थ है, क्योंकि तुमने अपने गुणों से जगत् अपना लिया है। 'राज्य-भार वहन

करो' यह अनुचित नियोग है, क्योंकि तुम तीनों भुवनों का भार वहन करने योग्य हो। 'प्रजा-पालन करो' यह अनुवाद ही है, क्योंकि तुम अपनी लम्बी भुजाओं से दिशाओं की रक्षा कर रहे हो। 'परिजनों का पालन करो' यह लोकपालोपम के लिए आनुषङ्गिक ही है। 'शस्त्राभ्यास करो' धनुष की प्रत्यञ्चा के घाव से जिसका प्रकोष्ठ काला हो गया है उसे यह आदेश देना निरर्थक है, 'चपलता रोको' नूतनतर वयस में ही जिसने इन्द्रियनिग्रह कर लिया है उसके लिए मेरी यह वाणी बिना अवसर की है। 'शत्रुओं को निःशेष करो' यह स्वभाव से तेजस्वी व्यक्ति के लिए चिन्ता करना है।" इस प्रकार कहते हुए ही उस राज-सिंह ने सदा के लिए अपनी आँखें बन्द कर लीं।

इसी समय सूर्य भी तेजरूपी आयु से वियुक्त हुआ। राजा का जीवन अपहरण करने में उसका जो अपराध[१] हुआ, उससे लजाते हुए उसने अपना मुँह नीचे लटका लिया। राज मृत्यु की शोकाग्नि से मानो भीतर ही भीतर जलता हुआ वह लाल हो गया, मानो अप्रिय प्रश्न[२] पूछने के लिए लोकाचार का अनुसरण करता हुआ वह आकाश से धीरे धीरे उतरा, मानो राजा को जलाञ्जलि देने की इच्छा से वह पश्चिम सागर के समीप पहुँचा। जलाञ्जलि देते ही उसके सहस्र कर मानो शोकानल से जलकर लाल हो गये।

१—दिनमें—सूर्य के अधिकार-समय में—राजा के मरने से सूर्य अपराधी हुआ।

२—कुशल-प्रश्न का उलटा, मृत्यु सम्बन्धी प्रश्न।

इस प्रकार महाराज की मृत्यु से अत्यन्त विरक्त और शान्त हो कर सूर्य ने गिरि-गुहा के भीतर प्रवेश किया। आतप मानो लोगों की बढ़ती हुई अश्रु-वृष्टि से भीगकर शीतल हो गया। जगत् मानो सभी लोगों की रोने से लाल आँखों की कान्ति से लाल होगया। दिवस मानो अगणित लोगों की गर्म साँसों से जलकर नीला हो गया। कमलों को छोड़कर श्री मानो राजा के पीछे चलीं। पृथ्वी मानो पति के शोक से कान्ति-विहीन होकर श्याम हो गई। कुल-पुत्रों की तरह कलत्रों को छोड़कर दुखी चक्रवाक जलाशय के तटों का आश्रय लेकर करुण प्रलाप करने लगे। कमलों ने मानो कोमल पत्तों के टूटने के भय से कोशों को सङ्कोचित कर लिया[१]। दिग्वधुओं के फूटे हृदय की रुधिर-धार की तरह लाल आभा बह चली। तेज का अधीश (सूर्य), जिसकी केवल लालिमा बची हुई थी, धीरे धीरे दूसरे लोक को चला गया[२]। प्रेत-पताका की भाँति लाल सन्ध्या आई, जिसकी लाली गगन-तल में फैल रही थी। शव-शिविका के अलङ्कार स्वरूप काले चमरों के समान दर्शन-प्रतिकूल[३] अन्धकार

१—या, (शोक से) कुशों पर पड़े रहनेवाले (भृत्यों) ने छत्र-भङ्ग से डरकर अपने सञ्चित धन को छिपा लिया।

२—या, तेज का अधीश राजा, जिसका केवल अनुराग बचा हुआ था, धीरे धीरे परलोक को चला गया।

३—अशुभ-दर्शनवाला; दृष्टि-अवरोधक।

दीखने लगा।. किसी ने कृष्ण अगुरु की चिता के समान काली दिशाओं वाली रात बनाई। गज-दन्त के समान विमल पत्तों तथा केसरों से युक्त कुमुद खिलने लगे, मानो (पति के) साथ मरने को उद्यत रानियाँ हँस रही थीं, जो हाथी-दाँत के निर्मल पत्रों से बनी कर्णिकाएँ[1] पहने थीं और जिनकी मुण्ड-मालाएँ बकुलों की बनी थीं। पेड़ों के ऊपर घोसलों में चिपटी हुई चिड़ियों की मीठी चहक सुनाई पड़ने लगी, जो नीचे उतरते देवविमानों की घण्टियों की बोली की तरह लगती थी। स्वर्ग-मार्ग में जाते हुए राजा की अगवानी करने के लिए आये हुए इन्द्र के आतपत्र के समान चन्द्र पूर्व दिशा में दिखाई पड़ा।

तब सामन्तों और पुरवासियों ने, जिनके आगे पुरोहित थे, स्वयं अपने कँधे समर्पित किये। शव की शिविका लेकर वे सरस्वती नदी के तीर पर गये। वहाँ उन्होंने नरपति-योग्य चिता में शिवि-सदृश उस राजा को अग्नि के सत्कार के साथ इस तरह भस्म कर दिया कि उसका केवल यश ही शेष रह गया।

राजकुल से सम्बद्ध सभी शोक-मूक लोगों से, मानो इकट्ठे हुए सकल जीवलोक से, घिरकर हर्ष ने भी भीतरी शोकानल से तपे स्नेह-द्रव से बाहर सिक्त होते हुए, बिना बिछावन की धरती पर

१—कान का एक गहना।

बैठे बैठे ही, राजाओं के साथ भीमरथी[1] के समान डरावनी वह सारी रात जगकर बिताई। और उसने सोचा—"तात के दूर होने पर अभी संसार की अवस्था यह है। लोगों के (उन्नति-) मार्ग भग्न हो गये। मनोरथ रुक गये। आनन्द के द्वार बन्द हो गये। सत्य-वादिता सो गई। (आनन्दमय) जीवन-यात्रा लोप हो गई। भुज-बल विलीन हो गया। मधुर-भाषिता ध्वस्त हो गई। पौरुष का प्रवास हो गया। समर-दक्षता समाप्त हो गई। परगुण-प्रीति नष्ट हो गई। विश्वास-पात्र रहे नहीं। सु-चरित निराश्रय हो गये। शास्त्र निरुपयोग हो गये। अतिशय पराक्रम-रुचि अवलम्बन-विहीन हो गई। विशेषज्ञता कथा में ही शेष रह गई। जनता शक्ति को जलाञ्जलि दे। प्रजापालकत्व संन्यास ग्रहण करे। उत्तम मनुष्यता वैधव्य-वेणी बाँधे। राजश्री आश्रम का आश्रय ले[2]। वसुमती धवल वस्त्र धारण करे। विलासिता वल्कल पहने। तेजस्विता तपोवनों में तपस्या करे। वीरता चीवर धारण करे। किन्तु, कृतज्ञता उन्हें कहाँ खोजने जायगी? विधाता महापुरुष निर्माण करने के वैसे परमाणु फिर

१—नरक-नदी, काल-रात्रि। सतहत्तर वर्ष, सतहत्तर मास और सतहत्तर दिन के बीतने पर एक भीमरथी रात होती है, जिसके पार करने पर मनुष्य सौ वर्ष तक जीता है।

२—इस वाक्य से हर्ष की बहिन राज्यश्री का भी दुर्भाग्य सूचित होता है।

कहाँ पायगा ? गुणों की दशो दिशाएँ शून्य हो गईं। धर्म का जगत् अन्धकार हो गया। अब शस्त्र से जीनेवालों का जन्म निष्फल है। तात के विना कहाँ से आयगी समूचे दिन तक होनेवाली वीरों की वह सभा, जिसमें समर की अतिशय रुचि से शुरू की गई रण-कथाओं से सुभटों के कपोल रोमाञ्चित हो जाते थे ? यदि स्वप्न में भी मैं उनका लाल और लम्बी आँखोंवाला मुख-कमल देख पाता ! यदि जन्मान्तर में भी मैं उनकी लोह-स्तम्भों से अधिक गरिमापूर्ण (भारी) भुजाओं का पुनः आलिङ्गन कर सकता ! यदि लोकान्तर में भी मैं "पुत्र, पुत्र, कहकर पुकारते समय उनकी सुधा-रस-वर्षिणी और मथे जाते क्षीर-सागर के निनाद सदृश गम्भीर वाणी सुन सकता !" इसी तरह चिन्ता करते करत उसने कठिनाई से रात बिताई।

ताम्रचूड़ मानो शोक से मुक्तकण्ठ हो चिल्लाने लगे। घरेलू मोरों ने बनावटी पहाड़ पर खड़े वृक्ष के शिखर पर से अपने को गिराया। निवास छोड़कर पक्षी वन की ओर चले। तम तत्क्षण विरल होकर विलीन हो गया। आत्म-स्नेह[१] मन्द हो जाने से दीप अभाव (निर्वाण) की अभिलाषा करने लगे। (प्रातःकालीन) चमकीले और लाल वल्कल से आवृत आकाश ने मानो संन्यास ग्रहण किया। प्रभात समय में चटकाओं के कन्धों के समान धूसर ताराएँ एकत्र हो रही

१—अपना तेल; अपने से स्नेह।

थीं, मानो राजा की छोटी छोटी हड्डियाँ चुनी जा रही थीं[१]। पर्वत के गैरिक आदि धातुओं से युक्त कपोलवाले[२] वन-करि-कुल विविध सरोवरों, सरिताओं और तीर्थों की ओर चले। प्रेत को अर्पित किये जाने वाले शुद्ध भात के उजले पिण्ड के समान[३] चन्द्र पश्चिम सागर के पुलिन पर गिरने लगा। उस (चन्द्र) का तेज मानो राजा की जलती चिता के धुएँ से धूसर हो गया था उसका चित्त मानो राजा की शोकाग्नि से जलकर काला हो गया था। उसका शरीर मानो अन्तःपुर की समस्त प्रोषित रानियों के मुख-चन्द्रों का उद्वेग देखकर भाग रहा था। पहले ही अस्त हुई रोहिणी की चिन्ता से माना उदास होकर वह धीरे धीरे अस्त हो गया। राजा की भाँति सूर्य आकाश में चढ़कर शोभित हुआ और राज्य की भाँति रात्रिकाल का परिवर्तन हो गया।

जैसे जगते हुए राजहंस कमलाकर को जगाते हैं, वैसे ही बुद्धि-मान् राजाओं ने जब हर्ष को सान्त्वना दी, तब वह महल से निकलकर (स्नान करने के लिए) चला। उसकी आँखें जल रही थीं। नूपुरों की बोली बन्द होने से घरेलू हंस मूक थे। अन्तः-

१—मृत व्यक्ति के दाह संस्कार के बाद दूसरे या तीसरे दिन जली हुई हड्डियाँ चुनकर गङ्गा के जल में या अन्य तीर्थों में डाली जाती हैं।

२—या, राजा के अवशेष से भरे घड़े लेकर।

३—शुद्ध मोम के ओले के समान उजला।

पुर में शोकाकुल कुछ कञ्चुकी मात्र रह गये थे। आँगन में पिता के परिजन खड़े थे, जो बनैले हाथियों के उस झुण्ड के समान लगते थे जिसका स्वामी गिर गया हो। अपने खम्भे के निकट दुखी राज-कुञ्जर निश्चल और मुस्त पड़ा था और उसकी पीठ पर महावत रो रहा था। अश्वरक्षकों के रोने से अस्तबल में राजा का घोड़ा व्यथित हो रहा था। शून्य सभा-भवन में 'जय जय' की ध्वनि बन्द थी। सरस्वती-तीर पर पहुँचकर उसने नदी में स्नान किया और पिता को जल दिया। नहाकर उसने दो धुले दुकूल पहने। विना बाल झाड़े ही, चमर[१] आतपत्र और लोगों को हटानेवाले सिपाहियों के विना, घोड़ा लाये जाने पर भी पैदल ही वह वहाँ से चल पड़ा। नाक के नोक पर लगी कमल-सदृश लाल आँखों से वह मानो शोक की अग्नि को बाहर निकाल रहा था, इस आशङ्का से कि केवल उसी के हृदय में स्थित उसका पिता कहीं जल न जाय। उसके ताम्बूल-रहित, चिर-प्रक्षालित, निचले होठ से—जो कल्प-तरु के किसलय के समान स्वभाव से ही लाल था—(लाल) प्रभा निकल रही थी; मानो वह घायल हृदय से मांस और रुधिर के कवल उगल रहा था। गर्म साँसें छोड़ता हुआ वह घर आया।

राजा के प्रिय भृत्य, मित्र और मंत्री, जिनके हृदय नृप के अनेक गुणों से आकृष्ट हो गये थे उसी दिन (घर से) निकल गये और रोते हुए बन्धुओं से रोके जाने पर भी उन्होंने प्रिय पुत्र-

[१]'निश्वासपर' की जगह 'निश्वामर' पढ़िये

कलत्रों को छोड़ ही दिया। कतिपयों ने अपने को (आत्म-हत्या की इच्छा से) प्रपातों से बाँधा। कुछ तो वहीं तीर्थों में रह गये। व्यथित-चित्त होकर कतिपयों ने तृण और कुश बिछाकर अनशन द्वारा विषम शोक शान्त किया। शोकावेग मे विवश होकर कतिपयों ने शलभों की भाँति अग्नि-प्रवेश किया। कुछ, जिनके हृदय दारुण शोकानल से जल रहे थे, मौन व्रत धारण कर हिमालय की शरण में चले गये। कतिपयों ने विन्ध्याचल की उपत्यकाओं में बनैले हाथियों की सूँडों के जल-कणों से सिक्त होते हुए पल्लव शयन पर सोकर सन्ताप शान्त किया। सेवा-विमुख हो कतिपयों ने सुलभ भोगों को भी छोड़ दिया और जंगल के शून्य स्थानों में परिमित ग्रासों पर ही रहने लगे। कुछ तो मुनि हो गये, धर्म हो जिनका धन हुआ, जो पवन पीकर रहे और जिनकी धमनियाँ बाहर निकल आईं। काषाय वस्त्र धारण कर कतिपयों ने पर्वत पर कापिल मत[1] अध्ययन किया। कतिपयों ने चूडामणि हटाकर शिर पर जटा बढ़ाई और शिव की शरण में चले गये। लाल और लम्बे चीवर से आवृत हो दूसरों ने स्वामि-भक्ति चमकाई। कुछ तो तपोवन मृगों की जीभों से चाटे जाते हुए बूढ़े हो गये। फिर कतिपयों ने (संन्यास-) व्रत धारण किया और नयन-पुटों तथा कमण्डलों में—जो किसलय-सरीखे हाथों से मले गये थे तथा लाल लगते थे—जल वहन करते हुए मुण्ड-मस्तक हो घूमने लगे।

१—सांख्य शास्त्र।

पितृ-शोक से विह्वल देव हर्ष की अवस्था वैसी ही रही। उसने श्री को शाप, मही को महापातक, राज्य को रोग, भोगों को भुजङ्ग, घर को नरक, बन्धु को बन्धन, जीवन को अयश, देह को द्रोह, आरोग्य को कलङ्क, आयु को अपुण्य-फल, आहार को विष, विष को अमृत, चन्दन को अनल, काम को आरा, और हृदय फटने को अभ्युदय समझा। वह सभी क्रियाओं से विमुख हो गया। (इस अवस्था में) वह पितृ-पितामह के आश्रय से आगत पुरातन कुल-पुत्रों से, वंश-परम्परा से सम्मानित तथा ग्राह्य-वचन गुरुओं से, श्रुति-स्मृति-इतिहास-विशारद वृद्ध द्विजातियों से, विद्वान् कुलीन और शीलवान् अमात्यों से, शिर पर अभिषिक्त राजाओं से, आत्म-तत्त्व को विधिपूर्वक जाननेवाले परिचित भिक्षुओं से, दुख सुख में समान रहनेवाले आश्रित गोतियों से, चित्त-ज्ञ प्रधान सचिवों से, निष्कारण मित्र मुनियों से, संसार की निस्सारता बताने में कुशल ब्रह्म-वादियों से, और शोक दूर करने में निपुण पौराणिकों से घिरा था।

इन लोगों से अस्वतन्त्र होने पर उसे मन में भी शोक करने का अवसर नहीं मिला। अनुनय किये जाने पर किसी किसी तरह वह आहार-आदि क्रियाओं में प्रवृत्त हुआ। (बड़े) भाई की याद करते हुए उसने सोचा—"महा-प्रलय-सदृश इस तात-मरण को सुनकर आर्य (अग्रज) अश्रु-जल से स्नान कर कहीं वल्कल न पहन लें। या राजर्षि होकर कहीं आश्रम का आश्रय न लें। या वह पुरुष-सिंह गिरि-गुहा में प्रवेश न कर जायँ। कमल-सरीखे आँखों में खूब आँसू भरकर इस

पृथ्वी को कहीं अनाथ न समझें। या वह पुरुषोत्तम प्रथम विपत्ति-रूपी विषम विष से विह्वल होकर अपने को भूल न जायँ। या अनित्यता से विरक्त होकर पास आ रही राज्य-लक्ष्मी का तिरस्कार न कर दें। या दारुण दुःखाग्नि से संतप्त होकर अभिषेक अस्वीकार न करदें। या यहाँ आने पर राजाओं से निवेदन किये जाने पर प्रतिकूल आचरण न करें। आर्य निश्चय ही पिता के बड़े पक्ष-पाती हैं। पिता की प्रशंसा में वह सदा मुझ से कहा करते थे -'तात हर्ष, किसका हुआ या होगा फिर काञ्चन ताल-तरु-सदृश यह लम्बा शरीर, सूर्य की प्रीति[१] से दिन भर उन्मुख और विकसित रहने वाला यह मुखरूपी महा-कमल, वज्र-स्तम्भ-सम चमकीले ये भुज-दण्ड और मद-माते हँसते हलधर की-सी यह शोभा? ऐसा मानी, पराक्रमी या उदार दूसरा कौन है?'"

इन तथा अन्य चिन्ताओं में मग्न होकर, भाई के आने की प्रतीक्षा में दर्शन की उत्सुकता से उसने किसी किसी तरह समय काटा।

श्री बाणभट्ट-कृत हर्षचरित में महाराज-मरण-वर्णन नामक
पञ्चम उच्छ्वास समाप्त।

१—राजा सूर्य का उपासक था।

षष्ठ उच्छ्वास

१—विजय चाहनेवाले (राजा) के समान यम-राज पृथ्वी पर खोज-खोजकर शूरों का संग्रह करता है, जिन्हें वह अपने गुप्त-चरों को भेज कर मँगाता है[१]।

२—खल द्वारा विश्वस्त व्यक्ति की हत्या का अपराध उसी के लिये घातक तथा वीर पुरुष के कोप का उत्तेजक होता है, जैसे हाथी द्वारा नवतरु तोड़े जाने का शब्द सिंह को नींद से जगा देता है[२]।

अनन्तर प्रेत को अर्पित प्रथम पिण्ड पानेवाले द्विजों ने भोजन किया। अशौच के उद्वेग-कारी दिवस बीत गये। राजा के निकट के शयन आसन चामर आतपत्र वस्त्र कच्चे बर्तन सवारी और शस्त्र आदि उपकरण, जो आँखों को जलाते थे, द्विजों को दिये जाने लगे। मृत राजा की हड्डियाँ लोगों के दिलों के साथ तीर्थ-स्थानों पर ले जाई गईं। चूने से लिपा चिता पर का मन्दिर शोक-शल्य हुआ।

१—इस पद्य से राज्यवर्धन का भावी वध सूचित होता है। गौडाधिपति शशाङ्क ने अपने दूत के द्वारा कन्या-दान का लोभ दिलाकर राज्यवर्धन को निमंत्रित किया और अपने घर में अनुचरों सहित भोजन करते हुए ही उसे छल से मार डाला—शङ्कर।

२—खल = गौडाधम शशाङ्क; वीर = हर्ष—शङ्कर।

महा-युद्धों का विजयी राज-गजेन्द्र, जङ्गल जाने के लिए छोड़ दिया गया। धीरे धीरे क्रन्दन मन्द हो गये। विलाप विरल हो गये। आँसू बन्द हो गये। साँसें शिथिल हो गईं। 'हा, कष्ट' के शब्द अस्पष्ट हो गये। शोक-शय्याएँ हटाई गईं। कान उपदेश सुनने में समर्थ हुए। हृदय अनुरोध की ओर ध्यान देने योग्य हुए। राजा के गुणों की गणना करने की योग्यता हुई। शोक स्थान-विशेषों पर ही होने लगा। कवियों का रुदन-गान (शोक-गीत) समाप्त हुआ। नर-नाथ का दर्शन केवल स्वप्नों में, स्थान केवल हृदयों में, आकृति केवल चित्रों में, और नाम केवल काव्यों में बच रहा।

एक दिन जब देव हर्ष सब काम छोड़कर बैठा हुआ था तो उसने एकत्रित वृद्ध बन्धुओं से, जिनके आगे पुश्तैनी बड़े बड़े लोग चुपचाप मुँह नीचे किये हुए थे, अपने को असमय में घिरा हुआ देखा। और देखकर उसने सोचा—"और क्या हो सकता है? यह शोकित लोक समूह आर्य (अग्रज) का आगमन निवेदन कर रहा है।" काँपते हृदय से उसने भीतर आते एक पुरुष से, जो तेजी से चल रहा था, पूछा—"अङ्ग, कहो तो क्या आर्य आ गये।" उसने धीरे से कहा—"देव, जैसी आज्ञा हो, वह द्वार पर हैं।" यह सुनकर सहोदर भाई के स्नेह एवं अतिशय शोक के मेल से हर्ष का मन मृदु हो गया, आँसू की धारा उमड़ आई और किसी किसी तरह उसकी जान नहीं निकली।

अनन्तर द्वारपाल द्वारा किये गये क्रन्दन ने, मानो पहले ही प्रवेश पाये हुए परिजन ने, राज्यवर्धन का आगमन निवेदन किया।

तब हर्ष ने कतिपय परिचित परिजनों से, जिनके शरीर बहुत दिनों तक स्नान-भोजन-शयन नहीं करने से कृश हो गये थे, घिरे हुए बड़े भाई को देखा। दूर तक तेजी स चलने से उनकी संख्या बहुत कम हो गई थी। छत्र पकड़नेवाला, वस्त्र धोनेवाला, सुवर्ण-घट धारण करनेवाला और आचमन का जल रखनेवाला पीछे पड़ गया था। तमोली थक गया था और तलवार धारण करनेवाला लंगड़ा रहा था। मार्ग की अविरल धूल से राज्यवर्धन का शरीर धूसर हो गया था, मानो परंपरागत अशरण वसुंधरा उसकी शरण में आ गई थी। युद्ध में हूणों को जीतने में लगे तीरों के घावों पर बँधी लम्बी सफेद पट्टियों से, मानो समीपवर्ती राज्य-लक्ष्मी के कटाक्ष-पातों से, उसका शरीर रंग-बिरंगा हो रहा था। उसके अतिकृश अवयवों से, जिनका मांस मानो राजा के प्राण बचाने के लिये शोकानल में हवन कर दिया गया था, भारी दुःख सूचित हो रहा था। वह अपने चूड़ामणि-रहित और शेखर-शून्य शिर पर, जिसका कुण्डल मलिन और आकुल था, मानो मूर्त्त शोक धारण कर रहा था। उसका ललाट, जिस पर गर्मी से पसीना बह रहा था, मानो पिता के पाँव पड़ने के लिए उत्कण्ठित हो रो रहा था। वह अपने अश्रु-जल के विस्तीर्ण प्रवाह से पृथ्वी को, जो मानो सम्मानित पति की मृत्यु से मूर्छित थी, अनवरत सींच रहा था। उसके कपोल दुःख से क्षीण हो गये थे, मानो अनन्त और अटूट अश्रु-प्रवाह के गिरने से निम्न हो गये थे। उसका अधर-बिम्ब, जिसका ताम्बूल-राग गल गया था, मुँह से निकलती उष्ण

साँसों के रास्ते में पड़कर मानो द्रवीभूत[१] हो रहा था। उसका कर्ण-प्रदेश, जो केवल पवित्रिका में बचे इन्द्रनील की किरणों से श्यामल हो रहा था, मानो हाल में ही पितृ-मरण सुनने से उत्पन्न महा-शोकाग्नि से जल गया था। यद्यपि उसकी दाढ़ी-मूछें खूब नहीं निकली थीं, तो भी अधोमुख और निश्चल आँखों की नीली पुतलियों की किरणें पड़ने से मानो शोक की दाढ़ी-मूछें उसके मुख-चन्द्र पर निकल आई थीं। वह सिंह के समान महाभूभृत[२] के गिरने से विह्वल और निरवलम्ब था। दिवस के समान तेजःपति के पतन से निष्प्रभ और श्याम हो गया था। नन्दन-वन के समान कल्प-पादप के टूटने से छाया-हीन था। दिग्-भाग के समान दिक्-कुञ्जर के प्रवास से सूना था। पहाड़ के समान भारी वज्र के गिरने से विदीर्ण होकर काँप रहा था। कृशता ने उसे मानो खरीद लिया था। कारुण्य ने मानो किङ्कर कर लिया था। उदासी ने मानो दास बना लिया था। शोक ने मानो शिष्य बना लिया था। आधि ने मानो अपना लिया था। मौन ने मानो मूक कर दिया था। पीड़ा ने मानो पीस दिया था। सन्ताप से वह मानो स्वेदमय हो रहा था। चिन्ता ने मानो चुन लिया था। विलाप ने मानो लूट लिया था। वैराग्य ने मानो ग्रहण कर लिया था। विवेक ने मानो तज दिया था। बुद्धि ने मानो तिरस्कार कर दिया था।

१—या भाग रहा था।

२—महाराज, महापर्वत।

दृढ़ता ने मानो दूर हटा दिया था। उसे उस शोक ने कवलित कर लिया था, जो वृद्धों की बुद्धि से नहीं समझाया जा सकता था, जो सुभाषितों के लिए असाध्य था, जो गुरु-वचनों के लिए अगम्य था, जो शास्त्रों की शक्ति से परे था, जो बुद्धि के प्रयत्नों के मार्ग से बाहर था, जो मित्र के अनुरोधों के क्षेत्र से बाहर था, जो विषयोपभोगों के विषय से बाहर था और जो काल-क्रम से होनेवाली शान्ति की भूमि से बाहर था।

बड़े भाई को देखकर, आवेग से उत्पन्न समग्र स्नेह (-सागर) की उत्कण्ठा (-तरंगों) द्वारा ऊपर उठाया जाता हुआ, हर्ष विह्वल होकर, भाई से मिलने चला। तब दूर से ही उसे देखकर देव राज्यवर्धन ने चिर-काल से रोके गये अश्रु-वेग को छोड़ना चाहा। सभी दुःखों की चिन्ता करता हुआ दूर तक लम्बे भुज-दण्डों को फैलाकर हर्ष को गले लगाकर, फिर क्षीण वक्षःस्थल पर जिसका वस्त्र नीचे गिर गया था, फिर कण्ठ पर, फिर कन्धे पर, फिर कपोल पर उसे रखकर वह मुक्त-कण्ठ से इतना रोया कि उन दोनों के हृदय मानो बन्धन-सहित फट गये। राजा को स्मरण कर राजा का प्रिय जन भी प्रतिध्वनि की तरह खूब रोया। बहुत देर के बाद नयन-जल की निःशेष वृष्टि हो जाने पर राज्यवर्धन स्वयं शान्त हो गया, जैसे (वर्षा के बाद) शरद् ऋतु में बादल। आसन ग्रहण कर उसने परिजन द्वारा लाये गये पानी से किसी किसी तरह अपनी आँखों को धोया। धोते समय हाथ के नखों की किरणें पड़ने से जान पड़ा जैसे उसकी आँखें महा-बाढ़ में होनेवाले फेन

से युक्त हो गई हों और बार बार पोंछे जाने पर भी पपनियों पर निकलते आँसुओं से आँखों का खुलना बन्द हो जाता था और दृष्टि नष्ट हो जाती थी। तमोली द्वारा लाये गये चन्द्र-किरण-सदृश रुमाल से उसने गर्म आँसू से तपे मुँह को पोंछा। कुछ देर तक चुप रहने के बाद वह उठा और स्नान-भूमि पर गया। वहाँ कुछ देर ठहरकर उसने बे-सँवारे और बिखरे बालों को लापरवाही से निचोड़ा। अवशिष्ट शोक से फड़कते हुए उसके होठ ने मानो जीने की इच्छा से जल से धुलकर सुन्दर हुए अपने को ही चूमना चाहा। धुली आँखों की धवलता से, मानो शरद् ऋतु की चाँदनी से विकसित विशद कुमुद-दलों के उपहार से, उसने दिग्देवताओं की पूजा की। और चतुःशाल की वेदी पर (बिछे) पलंग पर चुपचाप पड़ रहा, जिस पर निम्न चँदोवे के नीचे एक उपधान रक्खा था।

देव हर्ष ने भी उसी तरह स्नान किया और धरणि-तल पर रखे कम्बल पर देह फैलाकर भाई के पास में ही चुपचाप पड़ रहा। दुःखी होते बड़े भाई को देखकर उसका हृदय मानो सहस्रधा विदीर्ण हो गया। भाई के दर्शन ने शोक को युवा बना दिया। लोगों के लिए यह दिवस नृपति-मरण-दिवस से भी दारुण हुआ। सारे नगर में न किसी ने रसोई बनाई, न किसी ने स्नान किया और न भोजन ही किया। सभी जगह सभी लोग रोये। इसी तरह दिवस बीत गया। मञ्जिष्ठा लता के समान लाल सूर्य पश्चिम सागर में डूबने चला, जान पड़ता था जैसे विश्व-

कर्मा के टङ्क से तत्त्वण काटा गया सूर्य[१] प्रचुर रुधिर-प्रवाह से युक्त मांस-पिण्ड की छवि धारण कर रहा हो। कमलों के सरोवर में कमलिनियों के बन्द हो रहे कोषों में विकल भौंरे गूँजने लगे। भावी विरह-व्याधि से कातर बधुओं से बँधे चक्रवाक-गण बन्धु-सदृश सूर्य की ओर, जो विकसित बन्धूक[२] की तरह चमक रहा था, आँसू-भरी निश्चल दृष्टि से देखने लगे। मधुकर-रव से पूर्ण तथा कलहंसियों से रमणीय कुमुदाकर इस तरह अलंकृत होने लगा, जैसे चलती हुई लक्ष्मी की मणि-मेखला का किङ्किणी-जाल बज रहा हो। आकाश में उगता हुआ शशाङ्कमण्डल अपने प्रकट कलङ्क के साथ इस तरह चमकने लगा, जैसे विशाल विषाण से उद्धृत कीचड़ से मलिन शिव-वृषभ का ककुद हो[३]।

उस समय प्रधान सामन्तों द्वारा, जिनके वचन का उल्लङ्घन नहीं हो सकता था, अनुरोध किये जाने पर राज्यवर्धन ने किसी किसी तरह भोजन किया। रात के बाद प्रभात होने पर सभी राजाओं के प्रवेश करने पर उसने समीप में स्थित हर्ष से कहा—"तात, आप गुरु-जनों के आदेश के पात्र हैं। शैशव में ही

१—विश्वकर्मा की बेटी से सूर्य की शादी हुई थी। वह पति का तेज न सह सकी। अतः विश्वकर्मा ने अपनी छेनी से सूर्य को काटकर उसका तेज कम कर दिया।

२—लाल रंग का एक फूल।

३—बैल के कन्धे पर का कुब्बड़।

आपने पिता की चित्त-वृत्ति को इस तरह ग्रहण किया, जैसे गुणयुक्त पताका हो। क्योंकि आप ऐसे आज्ञाकारी हैं, इसलिए मेरा यह हृदय, जो विधि-विधान के द्वारा निर्दय बना दिया गया है, आपसे कुछ कहना चाहता है। आपको बाल-भाव-सुलभ प्रेम-विरोधी प्रतिकूलता का आचरण नहीं करना चाहिए। मूर्ख की तरह आप मेरी इस इच्छा में विघ्न न करें। आप निश्चय ही लोकाचार से अनभिज्ञ नहीं हैं। तीनों लोकों के पालन करनेवाले मांधाता के मरने पर (उसके पुत्र) पुरुकुत्स ने क्या किया? या भ्रू-लताओं से अठारहों द्वीपों को आदेश देनेवाले दिलीप के मरने पर रघु ने क्या किया? या असुरों के महा-समर के बीच देव-रथ पर चढ़नेवाले दशरथ के मरने पर राम ने क्या किया। जिस दुष्यन्त के लिए चारों समुद्र गोष्पद (के समान तुच्छ) थे उसके मरने पर भरत ने क्या किया? अब ये रहें, सौ से भी अधिक यज्ञों के धुएँ से जिसने इन्द्र के यौवन को मलिन कर दिया था[१], ऐसे प्रातःस्मरणीय अपने पूज्य पिता के मरने पर क्या तात ने ही राज्य (-भार ग्रहण) नहीं किया? शोक जिसे अपने वश में कर लेता है, उसे शास्त्रज्ञ कायर बताता है। शोक का क्षेत्र स्त्री है। तथापि क्या करूँ? यह स्वभाव की कापुरुषता या स्त्री-

१—सौ अश्वमेध करनेवाला व्यक्ति इन्द्र-पद का अधिकारी हो जाता था, अतः सौ से भी अधिक यज्ञ करनेवाले प्रभाकरवर्धन के पिता ने इन्द्र को बूढ़ा अर्थात् चिन्तित बना दिया।

स्वभाव है जो इस तरह से पितृ-शोकानल का स्थान हो गया हूँ। जैसे पर्वत के गिरने पर झरने निःशेष होकर झर जाते हैं, वैसे ही पिता के मरने पर मेरे सभी आँसू चू गये। जैसे सूर्य के अस्त होने पर दशों दिशाएँ अन्धकार हो जाती हैं, वैसे ही तात के मरने पर मेरा प्रज्ञा-आलोक नष्ट हो गया। मेरा हृदय जल रहा है, (अतः) मानो जल जाने के भय से विवेक स्वप्न में भी पास नहीं आता। प्रबल संताप से सारा धैर्य इस तरह विलीन हो रहा है, जैसे लाख का बना हो। विषाक्त बाण से घायल हरिणी की भाँति मेरी मति पद पद पर मूर्छित हो रही है। पुरुष से द्वेष करनेवाली स्त्री की भाँति यह भ्रमणशील स्मृति दूर से ही मेरा परिहार (परित्याग) कर रही है। माता की भाँति धृति तात के ही साथ चली गई। मेरा दुख दिन दिन उसी तरह बढ़ रहा है जैसे महाजन का लगाया हुआ धन। मेरा शरीर अश्रु-जल-धारा बरसा रहा है, जैसे यह शोकानल के धुएँ से बने बादलों से भरा हुआ हो। सभी लोग मरने के बाद पाँच तत्त्वों को प्राप्त होते हैं, यह बालकों का मिथ्या-कथन है। तात तो केवल अग्नि को ही प्राप्त हुए, जो मुझे इतना जला रहे हैं। यह दुर्निवार शोक युद्ध करने में असमर्थ इस हृदय को घेरकर उठा है और इसे उसी तरह जला रहा है जैसे बाड़व वारि-राशि को, उसी तरह विदीर्ण कर रहा है जैसे पवि पर्वत को, उसी तरह कृश बना रहा है जैसे क्षय क्षपाकर को और उसी तरह कवलित कर रहा है जैसे राहु रवि को। मेरा हृदय सुमेरु-सदृश वैसे महा-पुरुष का निपात केवल आँसुओं से ही नहीं टाल सकता।

राज्य के प्रति मेरी दृष्टि उसी तरह विरक्त हो गई, जैसे विष को देखकर चकोर की आँखें लाल हो जाती हैं। मेरा मन लक्ष्मी को तजना चाहता है, जो चण्डालों की स्त्री की भाँति अनेक मृतों के वस्त्र से अपने को ढकती है, अनेकों का रञ्जन करती है, तथा वंश-बाह्य[१] और अनार्य है। मैं पक्षी की तरह जले घर में एक क्षण भी नहीं ठहर सकता हूँ। अतः मैं आश्रम में (जाकर) मनरूपी वस्त्र में लगे स्नेहरूपी मल को पर्वत-शिखर पर के झरने के स्वच्छ सोते के निर्मल जल से धोना चाहता हूँ। अतः आप मुझ बड़े (भाई) की राज्य-चिन्ता ग्रहण करें, जो उसी तरह यौवन सुख-विनाशिनी और अप्रिय है जैसे कि वह वृद्धावस्था, जिसे पिता की आज्ञा से पुरू ने स्वीकार किया था। विष्णु के समान आप सभी बाल-क्रीड़ाओं को छोड़कर अपनी छाती लक्ष्मी को दें। मैंने शस्त्र छोड़ा।" यह कहते हुए उसने खड्ग-धारी के हाथ से अपनी तलवार लेकर पृथ्वी पर फेंक दी।

तब, यह सुनकर हर्ष का हृदय इस तरह विदीर्ण हो गया, जैसे वह तेज नोकवाले छुरे से घायल हुआ हो। वह सोचने लगा—"क्या मेरे पीछे किसी असहनशील व्यक्ति ने आर्य को कुछ कहकर कुपित कर दिया है? या वे इस प्रकार मेरी परीक्षा लेना चाहते हैं? या यह शोक से उत्पन्न इनका मानसिक विकार है?

१—लक्ष्मी वंशानुक्रम से अथवा बाँस की पताका पर ढोई जाती है और चाण्डाल की स्त्री वंश अर्थात् कुल से बाहर है।

या ये आर्य ही नहीं हैं ? या आर्य ने कुछ और ही कहा और इस शोक-शून्य कान से मैंने कुछ और ही सुना ? या आर्य ने कुछ और ही कहना चाहा और मुँह से कुछ और ही निकल गया ? या यह समूचे वंश का विनाश और निपात करने के लिए विधि का उपाय है ? या मेरे कर्मों के निखिल पुण्य नष्ट होने की सूचना है ? या प्रतिकूल समग्र ग्रहमण्डल की करतूत है ? या तात-विनाश से निर्भय हुए कलिकाल की क्रीड़ा है ? जिससे इन्होंने जिस किसी की तरह मुझे जो कुछ करनेवाले के समान (समझकर) अति दुष्कर कर्म करने के लिए वैसे ही आदेश दिया, जैसे श्रोत्रिय को सुरा-पान के लिए, सद्भृत्य को स्वामी से द्रोह करने के लिए, सज्जन को नीचों का संग करने के लिए और कुलाङ्गना को व्यभिचार करने के लिए (आदेश दिया जाय)। जान पड़ता है जैसे मैं पुष्पभूतिवंश में उत्पन्न ही नहीं हुआ हूँ, जैसे पिता का पुत्र ही नहीं हूँ, जैसे इनका अनुज ही नहीं हूँ, जैसे भक्त ही नहीं हूँ, और जैसे अपराधी हूँ। शौर्य-मदिरा से मत्त समस्त सामन्त-मण्डलरूपी समुद्र को मथने में मन्दर-स्वरूप वैसे पिता के मरने पर वन को जाना, वल्कल पह-नना अथवा तप करना ही उचित है। किन्तु मेरे लिए राज्य करने की यह आज्ञा मुझ जले हुए को और भी जलानेवाली है, अना-वृष्टि से सूखे हुए मरुस्थल में अङ्गारों की वृष्टि है। अतः यह आर्य के योग्य नहीं है। यद्यपि जगत् में निरभिमान प्रभु, निर्लोभ द्विज, कोप-रहित मुनि, अचपल कपि, मत्सर-रहित कवि, अ-तस्कर वणिक्, ईर्ष्या-रहित पत्नी-प्रेमी, अदरिद्र सुजन, अखल धनी,

अक्लेश-कर क्षुद्र व्यक्ति, अहिंसक व्याध, ब्राह्मण-कर्म में रत पाराशरी भिक्षु, सुखी सेवक, कृतज्ञ धूर्त, खूब खाने की चाह नहीं रखने वाला परिव्राजक, मधुरभाषी निष्ठुर, सत्यवादी अमात्य और अदुर्विनीत राजकुमार दुर्लभ है, तथापि मुझ राजकुमार के आचार्य तो आर्य ही हैं। श्रेष्ठ गन्ध-कुञ्जर-सदृश वैसे पिता का निपात हुआ, राज्याधिकारी ये बड़े भाई राजपाट छोड़कर शिला-स्तम्भ के समान विशाल जंघाओं और भुजाओं को विफल करते हुए, राज्य छोड़कर नये वयस में ही तपोवन जा रहे हैं, ऐसी अवस्था में क्या कोई सभी लोगों की आँखों से आँसुओं से पूर्ण वसुधा नामक मृत्पिण्ड की इच्छा कर सकता है या क्या चाण्डाल भी शूरों के परिवार में पन-हारिन का काम करनेवाली लक्ष्मी की कामना कर सकता है, जिसका नीच आचरण धन-मद से खेल करनेवाले सभी खलों के मुखों के विकार से सूचित होता है? क्योंकर आर्य ने इस अत्यन्त अनुचित बात की संभावना की? मुझमें कौन-सा दोष देखा गया? क्या इनके चित्त से लक्ष्मण (का उदाहरण) गिर गया या ये भीम आदि को भूल गये? आर्य तो ऐसे प्रभु नहीं थे, कि वे भक्त जनों की उपेक्षा कर केवल स्वार्थ-निष्पादन में निष्ठुर हो जायँ। और भी, आर्य के तपोवन चले जाने पर कौन ऐसा जीवनेच्छु है, जो मन से भी मही का ध्यान करे? वज्र के नोकों के समान तेज नखों की प्रचण्ड चपत से मतवाले हाथी के विदीर्ण हुए मस्तक की मद-धारा से चारु केसर रंगे जाने से जिसका मुख चमकीला हो जाता है उस सिंह के वन-विहार के

लिए बाहर निकल जाने पर गिरि-गुहा के निवास की पीछे में (सूने में) कौन रक्षा करता है ? वीरों का सहायक उनका प्रताप ही है। इस चपला लक्ष्मी के ऊपर आर्य का यह कौन-सा अनुग्रह है जो ये इसे बूढ़ी के वेष में उसी तपोवन में नहीं ले जा रहे हैं जहाँ वल्कल से अपने कुचों को ढककर यह वन-मृगी की भाँति कुश, कुसुम, समिधा और पलाश के पूले ढोती रहे। किन्तु नाना प्रकार के इन व्यर्थ तर्क-वितर्कों से क्या ? चुपचाप ही आर्य का अनुसरण करूँगा। गुरुवचन के उल्लङ्घन से जो पाप होगा उसे तपोवन में तप ही दूर करेगा।" ऐसा निश्चय कर वह मन से पहले ही तपोवन चला गया और मुँह लटकाये खड़ा रहा।

इसी बीच रोते हुए वस्त्राधिकारी ने, जिसे पहले से आदेश मिल चुका था, वल्कल ले आकर रक्खे। राज-कुल की स्त्रियाँ इस तरह रो रही थीं, जैसे निर्दय कर-तल के ताड़न के भय से उनके हृदय कहीं चले गये हों। विप्र-जन अपनी भुजाओं को ऊपर उठाकर 'अब्रह्मण्यम्' कहते हुए जोर जोर से रो रहे थे। पुरवासी चित्कार करते हुए (राजकुमार के) पाँव पड़ रहे थे। चिरंतन परिजन विचलित-चित्त हो भाग रहे थे। परिजनों के सहारे वृद्ध बन्धु भीतर आ रहे थे, उनके शरीर काँप रहे थे, वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे, वचन शोक से गद्गद थे, आँखों से आँसू बह रहे थे और मन मना करने में लगे थे। चित पड़े हुए निराश सामन्त-गण नखों से मणि-तल पर रेखाएँ खींचते हुए साँसें ले रहे थे। सबालवृद्ध सभी प्रजाएँ तपोवन के लिए प्रस्थान कर चुकी थीं।

सहसा ही संवादक नामक राज्यश्री का सुपरिचित परिचारक भीतर घुसा। वह शोक से व्याकुल था और उसकी आँखों से अश्रु-सलिल झर रहा था। मुक्तकण्ठ से रोते हुए वह सभा में गिर पड़ा। तब अपने भाई के साथ उद्विग्न होकर देव राज्यवर्धन ने स्वयं उससे पूछा—"भद्र, कहो कहो, जिसने हमारा विपत्ति-व्यवसाय बढ़ाने के लिए धैर्य बाँधा है और जो राज-मृत्यु से प्रसन्न-चित्त है वह दैव इससे अधिक अधैर्य-कर और क्या ला रहा है?" उसने किसी किसी तरह कहा—"देव, पिशाचों की तरह नीच प्रायः दुर्बल पर ही प्रहार करते हैं। क्योंकि जिस दिन राजा के मरने की बात फैली उसी दिन दुरात्मा मालव-राज ने अपने पुण्य-सहित देव ग्रहवर्मा को इस संसार से पृथक् कर दिया। राजकुमारी राज्यश्री भी, जिसके चरणों को लोहे की काली बेड़ियों ने चूमा, चोर-स्त्री की भाँति बाँधी जाकर कान्यकुब्ज की कारा में डाल दी गई। और किम्वदन्ती है कि सेना को नायक-हीन समझकर वह दुर्बुद्धि इस देश को भी लेने की इच्छा से यहाँ आना चाहता है। यह निवेदन किये जाने पर स्वामी जैसा करें।" वैसी अनुपेक्षणीय असंभावित और आकस्मिक दूसरी विपत्ति सुनकर, ऐसा परिभव पहले कभी नहीं सुनने के कारण, दूसरों द्वारा किये जाने वाले परिभव को स्वभाव से नहीं सह सकने के कारण, नव यौवन के अतिशय अभिमान के कारण, वीरों के कुल में जन्म होने के कारण, दयनीय दशा को प्राप्त बहिन के स्नेह के कारण, वैसा भारी शोक बद्ध-मूल होने पर भी उसी समय नष्ट हो गया। सहसा

ही उसके हृदय में भयङ्कर कोप का प्रवेश हुआ, जैसे गिरि-गुहा में सिंह का। चौड़े ललाट पर भीषण भौंहें चढ़ आईं, जो कृष्ण की शङ्का से व्याकुल कालिय-कुल के कुटिल भ्रूभङ्ग से तरङ्गित श्याम यमुना के समान थीं। दिग्गज के कुम्भ के समान विशाल बाहु के ऊपर बाएँ हाथ ने अभिमानपूर्वक स्पर्श करते हुए अपने नखों के किरणरूपी जल के प्रवाह से मानो समर-भार ग्रहण करने के लिए अभिषेक किया। उसका दाहिना हाथ--जिसकी हथेली पसीने से भर रही थी और जो मानो दुर्मद लक्ष्मी के केश पकड़ने की उत्कण्ठा से काँप रहा था—फिर से भीषण तलवार के पास पहुँचा, मानो मालव-नरेश को निःशेष नष्ट करने के लिए उसका केश पकड़ लिया। गालों पर क्रोध की लाली दीख पड़ी, मानो शस्त्र-ग्रहण से प्रसन्न राज-लक्ष्मी द्वारा किये जाते हुए आनन्दोत्सव में सिन्दूर-धूलि उड़ाई गई। समीप-वर्ती सभी महीपों के चूड़ामणि-समूह को मानो पददलित करने के अहङ्कार से दाहिना पाँव उठकर बाँई जाँघ पर चढ़ गया। बाँयाँ पाँव, जो मणि-तल को घिस रहा था, अँगूठे को निष्ठुरता-पूर्वक मोड़ने से निकले हुए धुएँ से मानो पृथ्वी को वीर-रहित करने के लिए ज्वाला छोड़ना चाहता था। दर्प के कारण फूटे हुए सरस घाव के रुधिर-प्रवाह से शोकरूपी विष के कारण सोये हुए पराक्रम को मानो जगाते हुए उसने छोटे भाई से कहा—"हे दीर्घायु, यह राज-कुल है, ये बान्धव हैं, ये परिजन हैं, यह राज्य है, राजा की भुजा से रक्षित ये प्रजाएँ हैं, मैं आज ही मालव-

राज-कुल के विनाश के लिए जा रहा हूँ। अब अत्यन्त अविनीत शत्रु का निग्रह ही वल्कल-ग्रहण है, यही तप है, और यही शोक दूर करने का उपाय है। मालव द्वारा पुष्पभूतिवंश का परिभव! —यह हरिणों द्वारा सिंह का बाल पकड़ना है, मेढकों द्वारा काल-सर्प को चपत लगाना है, बछड़ों द्वारा बाघ को बन्दी बनाना है, जल-सर्पों द्वारा गरुड़ का गला दबाना है, काठ द्वारा आग को जलने का आदेश देना है, तिमिर द्वारा रवि का तिरस्कार है। महाक्रोध से मेरा ताप छिप गया। सभी राजा और हाथी तुम्हारे ही साथ रहें। केवल यह भण्डि दस हजार घोड़ों के साथ मेरा अनुगमन करे।" इतना कहकर उसने तुरंत ही प्रयाण-पटह बजाने का आदेश दिया।

बहिन और बहनोई का हाल जानकर देव हर्ष का मन क्रोध से जल ही रहा था कि साथ नहीं चलने के लिए भाई का वैसा आदेश सुनकर उसकी प्रणय-पीड़ा बहुत बढ़ गई और उसने कहा—"मैं साथ चलूँ, इसमें आर्य कौन-सा दोष देखते हैं? यदि मैं बालक समझा जाऊँ, तब तो किसी प्रकार भी त्याज्य नहीं हूँ। यदि रक्षणीय, रक्षा-स्थान तो आप का भुज-पिञ्जर है। यदि असमर्थ, तो मेरी परीक्षा कहाँ ली गई? यदि संवर्धनीय, तो वियोग मुझे दुबला बना डालेगा। यदि क्लेश सहने में असमर्थ, तो स्त्री-वर्ग में रखा जा रहा हूँ। यदि आप चाहें कि मैं सुख का अनुभव करूँ, वह तो आप के ही साथ जा रहा है। यदि आप कहें कि मार्ग में बड़ा क्लेश है, तो विरह अत्यन्त असह्य है।

यदि आप चाहते हैं कि मैं स्त्री की रक्षा करूँ, वह तो आप की तलवार में रहती है। यदि आप मुझे पीछे रखना चाहें, आप का प्रताप तो है ही। यदि आप कहें कि राज-वृन्द शासक-विहीन हो जायगा, वह तो आर्य के गुणों से सुबद्ध है। यदि बड़े को सहायक नहीं रखना चाहिए, तो आप मुझे अपने से मानो जुदा समझते हैं। यदि आप कुछ ही परिजनों के साथ जाना चाहते हैं, तो चरण-रज ले जाने में कौन-सा बड़ा भार होगा? यदि दोनों का जाना अनुचित है तो मुझे ही जाने की आज्ञा देकर अनुगृहीत करें। यदि आप का भ्रातृ-स्नेह कातर है, तो यह दोष उभय-निष्ठ है[१]। आप की भुजा की यह कैसी स्वार्थ-परता है कि आप अकेले ही क्षीर-सागर के फेन पटल के समान सफेद कीर्ति-अमृत का पान करना चाहते हैं? आप के प्रसाद से मैं पहले कभी वञ्चित नहीं हुआ। अतः आर्य प्रसन्न हों और मुझे भी ले चलें।" यह कह धरती पर शिर रखकर वह पैरों पर गिर पड़ा।

बड़े भाई ने उसे उठाकर फिर से कहा—'तात, आप इस तरह बड़ी तैयारी के द्वारा अति तुच्छ शत्रु को भी बलात् क्यों बड़ा बना रहे हैं? एक हरिण (पकड़ने) के लिए सिंहों का झुण्ड अति लज्जा-कर है। तृणों के विरुद्ध (लड़ने के लिए) कितनी ज्वालाएँ कवच पहनती हैं? अठारह द्वीपरूपी कङ्कण की माला

१—जिस तरह मेरी युद्ध-यात्रा से आप आशङ्कित हो सकते हैं उसी तरह तो मैं भी आप की युद्ध यात्रा से।

से भूषित मेदिनी तो आप के पराक्रम का क्षेत्र है ही। बड़े बड़े पहाड़ों को उड़ा ले जानेवाली हवाएँ अत्यन्त हल्की रूई की गाँठ के लिए कमर नहीं कसती हैं। सुमेरु पर्वत के तट से प्रणय करने में प्रगल्भ दिग्गज छोटे वल्मीक पर आघात-क्रीड़ा नहीं करते। आप मांधाता के समान दिग्विजय करने के लिए सुन्दर सुवर्ण पत्र-लताओं से अलंकृत धनुष धारण करेंगे, जो सभी राजाओं का विनाश-सूचक महाधूमकेतु होगा। शत्रु-विनाश करने की मेरी जो यह दुर्निवार भूख जगी है इसमें आप मुझ अकेले का एक कोप-कवल क्षमा करें। आप रहें।" इतना कहकर वह उसी दिन शत्रु के प्रति निकल गया।

अनन्तर भाई के उस प्रकार चले जाने पर, पिता के स्वर्गीय होने पर, बहनोई के प्राणों का प्रवास होने पर, माता के मरने पर, बहन के कैद होने पर, अपने झुण्ड से भटके हुए बनैले हाथी के समान देव हर्ष अकेला ही समय बिताने लगा। बहुत दिनों के बीतने पर एक बार रात का तृतीय भाग शेष रहने पर भ्रातृ-गमन के उस शोक ने उसे जगा दिया। उस समय हर्ष ने पहरेदार के द्वारा गाई जाती हुई यह आर्या सुनी—

जैसे पवन पोत को हठात् ही नष्ट कर देता है वैसे ही विधाता पुरुष को, यद्यपि पोत की भाँति पुरुष के गुणों का गान द्वीपों में हुआ हो और उसने उत्तम रत्न-राशि उपार्जित की हो॥ २॥

यह सुनकर अनित्यता की भावना से वह और भी दुःखी हुआ। रात के प्रायः बीत जाने पर उसे एक क्षण के लिए नींद

आई। उसने स्वप्न में गगन-चुम्बी लोह-स्तम्भ को टुकड़े टुकड़े होते देखा। काँपते हृदय से फिर जगकर वह सोचने लगा—"क्यों ये दुःस्वप्न मेरा पीछा लगातार कर रहे हैं? अशुभ-सूचक बाईं आँख दिन-रात फड़क रही है। अत्यन्त दारुण उत्पात, जो किसी बड़े राजा का विनाश बता रहे हैं, क्षण भर के लिए भी शान्त नहीं होते। प्रतिदिन कबन्ध[१]-युक्त सूर्यमण्डल में राहु[२] इस तरह दीखता है जैसे उसका शरीर अविकल हो गया हो। सप्तर्षिगण मानो तप करने के समय कवलित किये गये धुएँ को उगल रहे हैं, जिससे समग्र ग्रह धूसर हो गये। दिन दिन दारुण दिग्दाह दिखाई पड़ता है। तारागण आकाश से गिर रहे हैं, जैसे दिग्दाह के भस्म-कण हों। चन्द्रमा मानो तारा-पात के शोक से निष्प्रभ है। प्रत्येक रात को जहाँ तहाँ उल्काएँ प्रज्वलित होती हैं, अतः चञ्चल ताराओं[३] से युक्त दिशाएँ मानो आकाश में ग्रहों का उग्र युद्ध देखती हैं[४]। राज्य-सञ्चार सूचक मारुत, जो धूल-पटल से भरा है और कंकरों से सूत्कार कर रहा है, पृथ्वी को मानो कहीं ले जा रहा है। समय को शुभ नहीं देख रहा हूँ।

१—शिर-रहित शरीर।

२—राहु को केवल शिर होता है।

३—तारक से आँख की पुतली का भी बोध होता है।

४—उल्काओं के प्रज्वलित होने से दिशाओं को ग्रह-युद्ध देखने का मौका मिलता है।

हमारे इस वंश में हाथी के समान कोमल वंशांकुर को भी नष्ट करनेवाले दैव को कौन रोक सकता है? सभी प्रकार से आर्य की स्वस्ति हो"। इस तरह चिन्ता करने के बाद, भीतर भ्रातृ-स्नेह उमड़ आने से उसका हृदय कातर होकर मानो चलायमान हो गया, जिसे उसने बड़ी कठिनाई से स्थिर किया। फिर उठकर उसने दैनिक क्रिया-कलाप किया।

सभा में जाकर उसने कुन्तल नामक बड़े घुड़सवार को, जो राज्यवर्धन का कृपापात्र था और अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ था, सहसा ही भीतर आते देखा। उदास लोगों का एक झुण्ड उसके पीछे आ रहा था। उसका शरीर मैले कपड़े से ढका था, जिसके सूत मानो असह्य दुख से निकलने वाली गर्म साँसों के धुए से रँग गये थे। उसका मुख अवनत था, जैसे जीवन धारण करने से लज्जित हो रहा हो। उसकी दृष्टि नाक की नोक पर लगी थी। शोक के कारण बढ़ी हुई दाढ़ी वाला मुँह चुप होने पर भी अटूट अश्रु-प्रवाह से स्वामि-विनाश बता रहा था। उसे देखकर राज-कुमार को आशङ्का हो गई। उसकी आँखों में जल आ गया, मुख-चन्द्र से साँस निकलने लगी, हृदय में आग जलने लगी और उसकी देह पृथ्वी पर आ गई, इस प्रकार दारुण अप्रिय सुनने के समय लोक-पालों ने उसके सभी अङ्गों को एक साथ ही पकड़ लिया। उस सवार से उसने सुना कि यद्यपि बड़े भाई ने मालव सेना को अनायास ही हरा दिया, तथापि गौडाधिप ने मिथ्या उपचारों से उसका विश्वास उत्पन्न किया

और अपने ही घर में उस निश्शस्त्र, एकाकी, और विश्रब्ध को मार डाला।

यह सुनकर वह महातेजस्वी सहसा ही प्रज्वलित हो उठा, प्रचण्ड क्रोधाग्नि के फैलने से उसका शोकावेग बढ़ गया। क्रोध में शिर काँपने से शिखा से रत्न के टुकड़े गिरे, मानो उसने रोषाग्नि के अंगारे उगले। निरंतर धड़कते हुए, क्रोध में टेढ़े हुए होंठ से उसने सभी तजस्वियों की आयु मानो पी ली। लाल होती आँखों के आलोक-विक्षेप से उसने मानो दिग्दाह का प्रदर्शन किया। स्वाभाविक शूरता की असह्य गर्मी से मानो जलकर क्रोधाग्नि ने अपने को शीतल करने के लिए स्वेद-सलिल बरसाया। अदृष्टपूर्व क्रोध से मानो डरकर उसके अपने ही अवयव काँपने लगे। हर की तरह उसने डरावनी सूरत बनाई। हरि की भाँति नरसिंह-रूप प्रकट किया। सूर्यकान्त-शैल के समान अपर-तेज[1] का प्रसार देखकर वह दीप्त हो गया। वह उसी प्रकार दुर्निरीक्ष्य हो गया जैसे बारह सूर्यों के उगने से कल्पान्त-दिवस। उत्पात मचानेवाले मारुत के समान वह सभी भूभृतों को कँपाने लगा। विन्ध्य के समान उसके शरीर का उत्सेध[2] बढ़ने लगा। महासर्प के समान वह दुर्नरेन्द्र[3] के अपमान से क्रोधित हो गया। जनमेजय के समान

१—शत्रु का तेज, सूर्य।

२—भव्यता, ऊँचाई। एक बार सूर्य के मार्ग को रोकने के लिए विन्ध्याचल बढ़ने लगा था।

३—दुष्ट राजा; विष-वैद्य, सँपेरा।

वह सभी भोगियों[१] को जलाने के लिए उद्यत हो गया। वृकोदर के समान वह दुश्मन के लोहू का प्यासा हो गया। ऐरावत के समान वह शत्रु को रोकने के लिए[२] दौड़ पड़ा। पौरुष का प्रथमागम-सा, मद का उन्माद-सा, गर्व का आवेग-सा, तेज का तारुण्यावतार-सा, दर्पका पूर्ण उद्योग-सा, यौवनोष्म का युगागम-सा, रण-रस का राज्याभिषेक-सा, असहिष्णुता का नीराजन-दिवस-सा वह परम भीषण हो गया।

तब उसने कहा—"गौड़ाधिप को छोड़कर कौन दूसरा व्यक्ति वैसे महापुरुष को, उसी समय जब कि वह द्रोण की तरह सब राजाओं को जीतकर निश्शस्त्र था, धृष्टद्युम्न की तरह[३] सब लोगों से निन्दित हत्या द्वारा शान्त कर सकता था? उस अनार्य को छोड़-कर किसके मानस में भागीरथी-फेन-पटल सदृश सफेद राजहंसों के समान आर्य के शौर्य-गुण, जो परशुराम के पराक्रम का स्मरण करा रहे हैं, पक्षपात नहीं करते[४]? क्योंकर ग्रीष्मकालीन सूर्य के समान इस उग्र (गौड़ाधिप) के कर[५] प्रीति की उपेक्षा कर कमला-कर का जल शोषण करने के समान आर्य का जीवन हरण करने में

१—राजाओं, सर्पों।

२—विपक्ष-वारण = विपक्षी हाथी (ऐरावत के पक्ष में)।

३—धृष्टद्युम्न ने अन्यायपूर्वक द्रोणाचार्य की हत्या की थी। (महाभारत द्रोणपर्व)।

४—अनुराग उत्पन्न नहीं करते, नहीं उड़ते (हंस के पक्ष में)।

५—किरणें, हाथ।

प्रवृत्त हुए ? यह किस दशा को प्राप्त होगा ? या किस योनि में प्रवेश करेगा ? या किस नरक में गिरेगा ? क्या कोई चाण्डाल भी ऐसा आचरण कर सकता है ? इस पापी का नाम लेने में भी मेरी जीभ मानो पाप-मल से लिप्त हो रही है। या किस उद्देश से इस क्षुद्र ने निर्दय घुण (नामक काष्ठ-छेदक कीट) के समान भीतर घुसकर[1] सब लोगों के आनन्द-दायक चन्दन-स्तम्भ के समान आर्य का नाश किया ? निश्चय ही मधु रस-आस्वाद के लोभी इस मूर्ख ने मधु-सदृश आर्य-जीवन का हरण करते हुए शिलीमुखों के सम्पात का भावी उपद्रव नहीं देखा। जैसे खिड़की पर का दीया घर को दूषित करनेवाला कज्जल ही जमा करता है, वैसे ही गौड़ाधम ने कपट-मार्ग प्रकाशित कर अपने कुल को दूषित करनेवाला अत्यन्त काला कलङ्क मात्र सञ्चय किया है। त्रिभुवन-चूड़ामणि सूर्य के शीघ्र ही अस्त होने पर क्या विधाता ने सत्पथ के शत्रु अन्धकार के निग्रह के लिए ग्रहषण्ड में विहार करनेवाले एकमात्र मृगराज चन्द्र को आदेश नहीं दिया है ? विनय सिखानेवाले अंकुश के भग्न होने पर दुष्ट हाथी को विनीत करने के लिए क्या सिंह का तीक्ष्ण-तर पञ्जा मौजूद नहीं है, जो सभी मतवाले हाथियों के कुम्भ-स्थल-सहित कठोर शिर को विदीर्ण करने में निपुण है ? चमकीले रत्नों के विनाशक ऐसे बुरे सुनार किसके वध्य नहीं हैं ? इस दुर्बुद्धि की अब क्या गति होगी ?

१—विश्वास दिलाकर (अन्य पक्ष में)।

जब वह इस तरह कह रहा था, उस समय सिंहनाद नामक सेनापति पास ही बैठा हुआ था। वह उसके पिता का भी मित्र था। वह सभी लड़ाइयों में आगे रहता था। उसकी देह हरि-ताल के पहाड़ की तरह गोरी थी। वह बढ़े हुए सीधे साल वृक्ष के धड़ की तरह चमकीला और लम्बा था। वह अति शूरता की गर्मी से मानो पक गया था। वह प्रौढ़ावस्था में था। अनेक शर-शय्याओं से उठा हुआ वह अपनी लम्बी आयु से मानो भीष्म का उपहास कर रहा था। उसके शरीर की दुर्जयता के कारण वृद्धावस्था ने भी मानो डरकर काँपते हुए ही उसके कड़े बालों को छूआ। चन्द्र किरण-सदृश सफेद बाल रूपी केसर तथा निष्कपट पराक्रम-रस के कारण वह मानो जीवन में ही सिंह-जाति को प्राप्त हो गया था। उन भौहों से जिनका कि सिकुड़ा हुआ ढीला चमड़ा लटक रहा था, उसकी दृष्टि ढक गई थी, मानो वह अन्य स्वामी का मुँह देखने के महापाप से बचना चाहता था। अपने डरावने मुँह से, जो सफेद और मोटी मूँछ से ढके कपोल से दीप्त था, मानो अकाल में ही विकसित काश-कानन से धवल शरद्-आरम्भ का विक्रम-काल[1] उगल रहा था। नाभि तक लटकती हुई दाढ़ी से, मानो उजले चँवर से वह मृत्यु को प्राप्त होने पर भी हृदय में स्थित स्वामी के

१—पराक्रम-काल, युद्ध का समय। वर्षा बीतने पर शरद् का आरम्भ होने पर युद्ध-यात्रा की जाती थी। विक्रमकाल से विक्रम सम्वत् का भी बोध हो सकता है जो चैत के सिवा कार्तिक में भी शुरू होता है।

ऊपर व्यजन डुला रहा था। वृद्धावस्था में भी खुले मुँह वाले बड़े-बड़े घावों से, जो मानो धुली तलवार की धारा का जल पीने को प्यासे थे उसका विशाल वक्षःस्थल विषम था। तेज शस्त्रों से किये गये अनेक बड़े बड़े घाव मानो टंकों की नोक से लिखी गई घनी अक्षर-पंक्तियाँ थीं, जिनके सहारे वह मानो सकल समरों के विजयोत्सव की गणना कर रहा था। वह पूर्व पर्वत के समान पादचारी[१] था। वीर-रस के विविध अनुष्ठानों की सुन्दरता में वह महाभारत का भी मानो लंघन कर रहा था। शत्रु-विनाश के आग्रह में वह परशुराम को भी मानो शिक्षा दे रहा था। समुद्र-भ्रमण[२] तथा लक्ष्मी को अनायास खींचने में वह मन्दर को भी मानो मन्द कर रहा था। वाहिनी-नायक[३] की मर्यादा का अनुसरण करने में वह समुद्र को भी मानो जीत रहा था। स्थिरता, दृढ़ता और ऊँचाई में वह अचलों को भी मानो लजा रहा था। स्वाभाविक तेज के फैलाव में वह सूर्य को भी मानो तुच्छ बना रहा था। स्वामि-भार वहन करने में पीठ घिस जाने से हर-वृषभ का भी मानो उपहास कर रहा था। वह क्रोधाग्नि की अरणि, शूरता की सम्पत्ति, मद का मद, दर्प का प्रसार, हठ का हृदय, विजयेच्छा का

१—पैदल चलनेवाला (सिंहनाद); समीपवर्ती पर्वतों के बीच में स्थित (पूर्व पर्वत)।

२—समुद्र-यात्रा; समुद्र-मथन।

३—सेनापति; समुद्र

जीवन, उत्साह का उच्छ्वास[1] दुर्विनीतों का अङ्कुश, दुष्ट भोगियों का नागदमन[2], श्रेष्ठ मनुष्यता की पराकाष्ठा, वीरों का गुरु शूरों की तुलना, शस्त्रों का पारदर्शी, गर्वोक्तियों का निर्वाहक, भग्नों को आश्वासन देनेवाला, प्रतिज्ञा का पालक, महासमरों का मर्मज्ञ, और समरार्थियों का घोषणा-पटह[3] था। उसने दुन्दुभि के शब्द के समान गम्भीर स्वर से वीरों का समर-रस उद्दीप्त करते हुए निवेदन किया —

"देव, जैसे अत्यन्त काले कौए अस्थिर काली कोयल से अपने को ठगे जाते हुए नहीं जान सकते हैं, वैसे ही नीच पुरुष चञ्चल दुष्ट लक्ष्मी से। लक्ष्मी को कमल के दोषान्धता[4] आदि विकार होते हैं। छाते की छाया से सूर्य को अन्तरित कर मूर्ख दूसरे तेजस्वी को भूल जाते हैं। अथवा वह बेचारा करे ही क्या, जिसने डर के मारे हमेशा अपने को पराङ्मुख रखा और कुपित तेजस्वियों के मुख कभी देखे ही नहीं, जिन (मुखों) के कपोल अतिशय शौर्य की वृद्धि से लाल होकर रोमाञ्चरूपी कोपानल-पल्लवों से युक्त हो जाते हैं? यह बेचारा जानता ही नहीं कि अप-

---

१—प्राण।

२—दुष्ट राजाओं का शासक, दुष्ट सर्पों का गरुड़।

३—युद्ध-यात्रा के समय बजाया जानेवाला डंका।

४—दोषों के प्रति अन्धता (लक्ष्मी के पक्ष में), रात में बन्द हो जाना (कमल के पक्ष में)। लक्ष्मी लोगों को उनके दोषों के प्रति अन्धा बना देती है—कवि।

मानित मनस्वी व्यक्ति विप्र-कृत (मारण आदि) अभिचारों के समान तत्क्षण समस्त कुल का प्रलय उपस्थित कर देता है। ठोकर खाकर तेजस्वी पुरुष जड़ के प्रति भी दीप्त होता है[१]। सभी वीरों के समाज से बहिष्कृत उसी के योग्य यह कर्म है, जो उस नरक में गिराने में समर्थ है, जिससे उद्धार नहीं हो सकता है। जब मनस्वियों को युद्ध का प्रधान धन धनुष और लक्ष्मी रूपी कलहंसी की क्रीड़ा के लिए कुवलय-कानन-स्वरूप कृपाण प्राप्त हैं, तो लक्ष्मी निकालने के लिए समुद्र-मथन आदि उपाय भी कृपण हैं, फिर ऐसे उपायों का कहना ही क्या? विधाता द्वारा धरती की रक्षा के लिए नियुक्त किये गये पर्वत मानो स्वयं असमर्थ होकर जिनकी वज्र-सदृश कठोर भुजाओं के अस्त्र के लिए लोहे उगलते हैं, वे बाहुशाली--विमल यश के बन्धु--क्योंकर मन से भी अकार्य का ध्यान कर सकते हैं? वीरों के हाथों के सामने, जो सबों को पराजित कर चमकते हैं, दिग्विजय करने में पतङ्ग-कर[२] पङ्गु हैं। केवल किंवदन्ती के अनुसार यम का निवास दक्षिण दिशा में है, वस्तुतः यह वीरों की उन भौहों में है जिनका मध्य भाग महामहिष के सींगों के समान कुटिल और भीषण है।

यह आश्चर्य है कि युद्ध में सिंहनाद[३] छोड़नेवाले शूरों के वीर-रस के रोमाञ्चरूपी कण्टकों के साथ केसर नहीं निकल आते।

१—जल में भी विद्युत् दीप्त होता है।

२—सूर्य की किरणें, पतङ्ग नामक कीट के कर।

३—सिंह-गर्जन, उस नाम का सेनापति।

चारों सागरों से उत्पन्न होनेवाली सम्पत्ति के पात्र दो ही हैं—शत्रुओं को जलानेवाला बड़वा-मुख (बड़वानल) या महापुरुष का हृदय। तेजस्वी की गर्मी सब समुद्रों को प्राप्त किये विना शान्त नहीं हो सकती। उस सर्प-राज के बड़े फण का फैलाव व्यर्थ है, जो अपने फण से केवल मृत्पिण्ड को ही धारण करता है। वीरों की भुजाएँ ही, जिनके प्रकोष्ठ दिग्गज की सूँड के समान भारी हैं, पृथ्वी के अप्रतिहत शासन के सुखद उपभोग का अनुभव करती हैं। सूर्य के समान, (जिसकी किरणों को उन्मुख पद्माकर ग्रहण करते हैं), पूर्ण तेजस्वी शूर, जिनके पाद-पल्लव अनुकूल लक्ष्मी के हाथों द्वारा दबाये जाते हैं, सुखपूर्वक दिवस बिताते हैं। चन्द्रमा के समान हरिणहृदय[1] और पाण्डुरपृष्ठ[2] कायर पुरुष के यहाँ लक्ष्मी दो रात के लिए भी निश्चल नहीं रह सकती। विकासशील वीर-रस अपरिमित यश बरसाता है। पौरुष के मार्ग आगे जाने वाले प्रताप से साफ (तैयार) होते हैं। दर्प के द्वार अपने शब्दों से शत्रुओं को भगा देते हैं। शूरता की शून्य दिशाएँ शस्त्रों के आलोक से प्रकाशित होती हैं। शत्रु के रुधिर की वृष्टि से, पृथ्वी की भाँति, लक्ष्मी भी अनुराग करती है। अनेक नरपतियों की मुकुट-मणियों की शिला पर घिसकर चरणों की नख-पंक्ति की भाँति

१—जिसके बीच में हरिण है (चन्द्र-पक्ष में), जिसका हृदय हरिण का-सा है (कायर के पक्ष में)।

२—जिसका ऊपरी भाग सफेद है, निर्लज्ज।

राजता भी उज्ज्वल हो जाती है। अनवरत शस्त्राभ्यास से कर-तलों की भाँति शत्रु-मुख भी श्याम हो जाते हैं। विविध घावों पर सैकड़ों पट्टियाँ बाँधी जाने से शरीर के समान यश भी धवल हो जाता है। कवचों से ढके शत्रु-वक्ष-स्थल रूपी किवाड़ों पर अस्त्रों के निष्ठुर प्रहार पड़ने से अग्नि-शिखा की भाँति लक्ष्मी भी निकल आती है। शत्रु-द्वारा स्वजन के मारे जाने पर जो मनस्वी जन विपक्षी स्त्रियों के छाती पीटने से अपने हृदय का दुख प्रकट करता है, कठोर तलवारों के चलने की हवा से दुख की साँसें लेता है, मारे गये शत्रुओं के शरीरों पर (उनके सम्बन्धियों के) आँसू की धार गिरने से रोता है, तथा शत्रु-स्त्रियों की आँखों से (तर्पण-) जल देता है, वही श्रेष्ठ है, दूसरा नहीं[1]। स्वप्न में देखी गई और नष्ट हुई वस्तुओं के समान क्षणिक शरीर को बुद्धि-मान् व्यक्ति अपना बन्धु नहीं समझते। वीर पुरुष स्थायी यश को ही शरीर समझते हैं। जैसे निरन्तर स्वतःप्रदीप्त मणि प्रदीप को कज्जल-मल स्पर्श नहीं कर सकता वैसे ही तेजस्वी को शोक छू नहीं सकता। आप साहसियों, बुद्धिमानों, शक्तिशालियों, कुलीनों, तेजस्वियों और (शत्रु-पराक्रम के) असहिष्णुओं में प्रथम हैं। धीरता के रहने के ये शीतल स्थान आपके अधीन हैं, जिनकी दीवारें वीरों के वक्षःस्थल हैं, जो विशाल बाहु रूपी वन की छाया से

१—शत्रु (गौड़ाधम) द्वारा स्वजन (राज्यवर्धन) की हत्या होने पर मनस्वी (हर्ष) का कर्तव्य निरूपण किया गया है।

आलिङ्गित हैं, जहाँ सुलभ असि-धारा के जल से तृप्ति होती है, और जहाँ समीपस्थ कोपाग्नि से बराबर धुआँ निकलता रहता है। एक गौड़ाधिप से क्या? वैसा कीजिये जिससे कि कोई दूसरा भी ऐसा आचरण फिर न कर सके। समस्त पृथ्वी की श्रद्धा चाहने वाले मिथ्या विजयेच्छुओं के ऊपर उनके अन्तःपुर की स्त्रियों की साँसों से चँवर चलवाइये। उनकी छत्र-छाया की आसक्ति को लोहू की गन्ध से अन्धे गृध्र मण्डल के छादन से नष्ट कीजिये। कुलक्ष्मी रूपी कुलटा के कटाक्ष से हुए इनके चक्षु-राग रोग[१] को गर्म शोणित-जल से दूर कीजिये। कुकर्म से प्रकटित शौर्य रूपी शोथ रोग को तेज तीरों से नाड़ी बेधकर शान्त कीजिये। पाद-पीठ की इच्छा करने से दुर्ललित पैरों के मान्द्य रोग को लोहे की बेड़ी रूपी महौषधि से दूर कीजिये। जय शब्द सुनने के लिये उनकी कानों की खुजलाहट को आज्ञा के तीक्ष्ण शब्द रूपी क्षार से नष्ट कीजिये। खम्भे की तरह तने और निश्चल मस्तकों के विकार को उन पर चरण-नखों के किरणरूपी चन्दन-लेप लगाकर दूर कीजिये। धन के घमण्ड से गर्म होनेवाले दुर्विनीतों के दुस्साहस-शल्य को कर देने की सन्देश रूपी सँड़सी से निकालिये। वीरों के झूठे घमण्ड से होनेवाले भ्रूभङ्ग रूपी अन्धकार को मणिमय पाद-पीठ के किरण-रूपी प्रदीप से विदीर्ण कीजिये। मिथ्याभिमान रूपी महासन्निपात को शिर के भारीपन को गलानेवाले चरण-लङ्घन

१—आँखें लाल होने की बीमारी।

से होनेवाले लाघव-रूपी औषधि से दूर कीजिये। धनुष की ताँत से होनेवाले किण[1] की कठोरता को सेवा में सतत जोड़े जानेवाले हाथों के संपुट की गर्मी से मुलायम कीजिये। आपके पिता, पितामह या प्रपितामह जिस रास्ते पर चले, वह तीनों भुवनों में स्पृहणीय है, आप उसे न तजिये। कायरों के योग्य शोक को छोड़कर आप कुल-क्रम से आई लक्ष्मी को वैसे ही ग्रहण कीजिये जैसे सिंह मृगी को। देव, नरेन्द्र देवत्व को प्राप्त हुए, गौड़ाधम सर्प के डँसने से राज्यवर्धन का जीवन गया, इस महाप्रलय के उपस्थित होने पर पृथ्वी को धारण करने के लिए अब आप ही शेष हैं। अशरण प्रजाओं को सान्त्वना दीजिये। जैसे शरत्कालीन सूर्य पहाड़ों की चोटियों पर अपनी गर्म किरणों को बिखेरता है वैसे ही आप राजाओं के शिरों पर अपने ललाटन्तप पाँव रखिये। अभिनव सेवा-दीक्षा के दुःख से निकलनेवाली शत्रुओं की अत्यन्त गर्म साँसों से तथा प्रकम्पित चूड़ामणियों की कोमल किरणों से आप अपने चरणों को चित्र-विचित्र बनाइये। यद्यपि तपस्वी परशुराम मृगों के साथ एकान्त में पाला-पोसा गया था और ब्राह्मण-सुलभ मृदुता से उसका मन कोमल था, तथापि पिता की हत्या होने पर उसने दृढ़ सङ्कल्प किया और समग्र क्षत्रिय-वंश को, जिसने प्रचण्ड चापों की नोकों के टङ्कार से दिग्गजों को मद-रहित तथा गूंजती हुई प्रत्यञ्चाओं से जगत् को

१—ताँत के घिस्से से कठोर हुआ मांस-पिण्ड।

ज्वर-पीड़ित कर दिया था, इक्कीस बार काटकर उन्मूलित किया। फिर मानियों में श्रेष्ठ देव का क्या कहना, जिनका मन शरीर की स्वाभाविक कठोरता के कारण वज्र-सा हो रहा है? अतः आप आज ही प्रतिज्ञा कीजिये और गौड़ाधम के प्राण हरण करने के लिए वह धनुष धारण कीजिये, जो प्राण सञ्चय करने को उत्सुक यम की असामयिक युद्धयात्रा की पताका है। अपमान की आग में जलते देव का यह दारुण दुःख-ज्वर शत्रु-रुधिर रूपी चन्दन-लेप के शीतल उपचार के विना शान्त नहीं हो सकता। अपमान-जनित संताप शांत करने का जब कोई उपाय नहीं रहा, तो भीम ने मन्दर रूपी साधन के विना ही रिपु-रुधिर रूपी अमृत को (निकालकर) इस तरह पिया, जैसे (प्रेयसी) हिडिम्बा के चुम्बन से सुस्वादित हुआ हो। परशुराम ने क्रोधाग्नि का ताप शान्त होने से सुख-प्रद, शीतल क्षत्रिय रुधिर सरोवर में स्नान किया।" इतना कहकर वह ठहर गया।

देव हर्ष ने उसे जवाब दिया—"आर्य ने तो मेरा कर्तव्य ही बताया। यदि यह सब नहीं होता, तो भी मेरी ईर्ष्यालु भुजा पृथ्वी को धारण करनेवाले शेष नाग को दायाद ही समझती है। ऊपर उठते हुए ग्रहों को भी मेरी भ्रूलता चलकर रोकना चाहती है। नहीं झुकने वाले पर्वतों का भी केश पकड़कर मेरा हाथ खींचना चाहता है। यह हृदय तेज से दुर्विनीत सूर्य-किरणों से भी चँवर पकड़वाना चाहता है। मृगराजों की राजा की पदवी से क्रुद्ध होकर मेरा पैर उनके शिरों को पाद-पीठ बनाना चाहता है।

स्वच्छन्द लोक-पालों द्वारा स्वेच्छापूर्वक गृहीत दिशाओं के भी हरणार्थ आदेश देने को मेरा अधर फड़क रहा है। फिर ऐसी दुर्घटना घटने पर पूछना ही क्या है? क्रोध-भरे मन में शोक करने का अवकाश ही नहीं है। जब तक गौड़ाधिप-चण्डाल—मेरे हृदय का दारुण शल्य, वध्य, पामर, त्रिभुवन निन्दित—जीवित है, तब तक दाढ़ी-मूँछ वाली स्त्री की भाँति असहाय होकर सूखे होठ से प्रतिकार-रहित सूत्कार करने में लजाता हूँ। जब तक शत्रु-सैनिकों की स्त्रियों की चञ्चल आँखों से अश्रु-जल नहीं बरसाता हूँ, तब तक मेरे हाथ जलाञ्जलि कहाँ से दे सकेंगे? गौड़ाधम की चिता के धुएँ को देखे विना मेरी इन आँखों में थोड़ा-सा भी आँसू कहाँ से आ सकता है? मेरी प्रतिज्ञा सुनिये—'आर्य की ही चरण-रज छूकर शपथ करता हूँ कि यदि कुछ ही दिनों में धनुष चलाने के अभिमान से दुर्विनीत हुए सभी राजाओं के पैरों में बेड़ियाँ न पहना दूँ तथा पृथ्वी को निर्गौड़ (गौड़ाधिप से रहित) न कर दूँ, तो मैं पापी घी से धधकती आग में पतङ्ग की भाँति कूद पड़ूँगा।'" इतना कहकर उसने युद्ध और संधि के प्रधान अधिकारी अवन्ति को, जो पास में ही खड़ा था, आदेश दिया—"लिखिये। उदयाचल तक, जिसकी चोटी को गन्धर्व-दम्पति रवि-रथ-चक्र के चीत्कार से चकित होकर छोड़ देते हैं,—सुवेल पर्वत तक, जहाँ त्रिकूट राजधानी[1] में छेनी से राम-

---

१—त्रिकूट पर्वत पर स्थित रावण की राजधानी लङ्का।

कृत लङ्का-ध्वंस का हाल खुदा हुआ है,—अस्ताचल तक, जिसकी गुफाएँ शराब के नशे से लुढ़कनेवाली वरुण की सुन्दर रमणियों के नूपुरों से मुखर होती रहती हैं,—गन्धमादन पर्वत तक जिसकी गुहाएँ यक्षिणियों के परिमल से सुगन्धित गन्ध-शिलाओं से सुरभित हैं, सभी राजा अपने हाथों को कर देने के लिए सज्जित करें या शस्त्र ग्रहण करने के लिए, दिशाएँ ग्रहण करें[1] या मेरे चँवर, शिर झुकावें या धनुष, आज्ञा पालन करें या प्रत्यञ्चा चढ़ावें, अपने शिर पर मेरे पैरों की रज चढ़ावें या शिरस्त्राण[2], हाथ जोड़ें या हाथी के झुण्ड, पृथ्वी छोड़ें या धनुष, (नौकर होकर) मेरा बेत पकड़ें या कुन्तयष्टि नामक अस्त्र, अपने को मेरे पैरों के नखों में (प्रतिबिम्बित) देखें या कृपाणरूपी दर्पण में। मैं आ रहा हूँ। लंगड़े के समान मुझे तब तक चैन कहाँ जब तक मैं सभी राजाओं की मुकुट-मणियों के आलोक से बना पाद-लेप (पाँव का मरहम), जो सभी देशों में मिल सकता है, न लगाऊँ ?" ऐसा निश्चय कर उसने सभा समाप्त की और राज-लोक को विसर्जित कर स्नान करने की इच्छा से सभा-भवन को छोड़ दिया। उठकर स्वस्थ व्यक्ति की तरह उसने सकल दैनिक क्रिया-कलाप किया। जब संसार ने यह प्रतिज्ञा सुनी, तब शान्त होती गर्मी के साथ दिवस क्षीण हो

१—पराजय स्वीकार करें।

२—युद्ध में शिर की रक्षा के लिए पहनी जानेवाली एक तरह की पगड़ी।

गया, मानो (प्रतिज्ञा सुनने के कारण) संसार का अभिमान विलीन हो गया।

तब भगवान् सूर्य भी, मानो अपना अधिकार छीने जाने के डर से, तेज विहीन होकर कहीं चला गया। कमल भी, जिनके भीतर भौंरों का गूँजना बन्द हो गया था, मानो डर से संकुचित होने लगे। विहग-गण भी अपने पर समेट कर निश्चल हो गये, मानो भय से छिपने लगे। सभी लोग सिर झुकाकर और हाथ जोड़कर प्रतिज्ञा के समान भुवन-व्यापिनी संध्या की पूजा करने लगे। घने अन्धकार से दिशाएँ तिरोहित हो गईं, मानो अपनी पद-च्युति के भय से चकित दिक्-पालों ने गगन-चुम्बी लोह प्राकार खड़े किये हों। अब हर्ष शाम की सभा में देर तक नहीं ठहरा। दीपों ने, जिनकी शिखाएँ झुकते हुए नृपों के चञ्चल वस्त्र के पवन से प्रकम्पित हो रही थीं, मानो उसे प्रणाम किया और उसने लोगों को बाहर भेज दिया। परिजनों को भीतर आने से मना कर उसने शयनागार में प्रवेश किया। बिछावन पर चित पड़कर उसने अपने अङ्ग ढीले कर दिये। चोर के समान अवसर पाकर भ्रातृ-शोक ने उस दीप-द्वितीय[१] को सत्वर पकड़ लिया। आँखें बन्द कर उसने अपने हृदय में अग्रज को जीवित-सा देखा। उसकी साँसें निरन्तर चलने लगीं, मानो भाई के प्राण खोज रही हों। धवल

१—जिसके पास केवल एक दीया था।

वज्र के समान अश्रु-जल की बाढ़ से मुँह ढककर उसने बहुत देर तक मौन रुदन किया और वह सोचने लगा—"क्या ऐसी आकृति के लिए यह ऐसा परिणाम उपयुक्त था? मेरे पिता का शरीर विशाल शिला-स्तूप के समान कठोर था, और आर्य तो पर्वत से निकले लोहे के समान और भी कठोर थे। क्या आर्य के विरह में मुझ भग्न-हृदय के लिए एक क्षण भी जीना उचित है? यही तो मेरी प्रीति, भक्ति या अनुवृत्ति है! आर्य के मरने पर क्या कोई मूर्ख भी मेरे जीते रहने की सम्भावना कर सकता है? वैसी वह एकता हठात् ही कहाँ चली गई? दुर्दैव ने अनायास ही मुझे पृथक् कर दिया। दुष्ट रोष ने मेरे शोक को अब तक ढक रखा था, मैं निर्दय मुक्तकण्ठ से देर तक रोया भी नहीं। प्राणियों का प्रेम सर्वथा मकड़े के जाल के समान भंगुर है, तुच्छ है। बन्धुता संसार-यात्रा तक का ही एक बन्धन है, इसी लिए तो आर्य के स्वर्गीय होने पर मैं भी परकीय के समान सुख से बैठा हूँ। ऐसे सुखी भ्रातृ-युगल को, जिनके हृदय पारस्परिक प्रेम-बन्धन से धन्य थे, जुदा कर दुर्दैव ने कौन-सा फल पाया? आर्य के गुण समस्त जगत् को इस तरह आनन्दित करते थे जैसे चन्द्रमय हों, किन्तु उनके परलोकवासी होने पर अब वे ही गुण इस तरह जला रहे हैं जैसे उनमें चिता की अग्नि लग गई हो।" इसी तरह उसने बहुत हार्दिक विलाप किया। फिर रात के बाद प्रभात होने पर उसने प्रतीहार को आदेश दिया—"मैं समस्त गज-सेना के अधिपति स्कन्दगुप्त को देखना चाहता हूँ।"

अनन्तर दौड़कर गये हुए अनेक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर स्कन्दगुप्त हाथी की प्रतीक्षा किये विना अपने मन्दिर से पैदल ही चल पड़ा। उसके शरीर-रक्षक शीघ्रतापूर्वक लोगों को सामने से हटाने लगे। पग-पग पर प्रतिदिशा में प्रणाम करते हुए प्रधान गज-वैद्यों से उसने श्रेष्ठ हाथियों का रात्रि-वृत्तान्त पूछा। छावनी के झुण्ड के झुण्ड लोगों ने कोलाहल किया। हथवान, जिनका हाथी का झुण्ड वश से बाहर हो गया था, आगे आगे दौड़कर हाथियों को बाँधने की कोशिश करने आये, और मोर के पंख के पंखों से सुशोभित बाँसों का वन धारण करने से वे (हथवान) विन्ध्य पर्वत पर के जंगल के समान हरे लगते थे। कुछ लोगों ने मरकत के समान हरी घास की मुट्ठियाँ दिखाईं और दूसरों ने हाल में पकड़े गये बड़े बड़े हाथियों के लिये प्रार्थना की। जिन्हें अभिमत मत्त मातङ्ग मिले थे, उन्होंने प्रसन्न हो खूब निकट आकर प्रणाम किया। कुछ लोगों ने अपने हाथियों को मद आने की खबर बताई। कुछों ने ढोल चढ़ाने का आदेश दिया। असावधानी से हुए अपराध के कारण हाथी छिन जाने के दुख से रखी गई लम्बी दाढ़ी वाले आगे आये। फटे पुराने कपड़े पहने नवागत व्यक्ति हाथी पाने के सुख की आशा से दौड़ चले। हाथी फँसाने वाली हथिनियों के अधिकारीगण बहुत दिनों के बाद अवसर पाकर अपने हाथ उठाये हुए ऐसी हथिनियों के गिनने में लगे थे। चञ्चल पल्लव की वर्दी पहने हुए अरण्य-पालों ने ऊँचे

तोत्रों[1] को उठाकर हाल में ही पकड़े गये हाथियों की संख्या बताने का उद्यम किया। महावतों ने (हाथियों की) युद्ध-शिक्षा के लिए चमड़े के बनावटी हाथियों का प्रदर्शन किया। हथवानों के दूतों ने, जो नये हाथियों के सञ्चरण का समाचार निवेदन करने के लिए भेजे गये थे, और जो क्षण क्षण में घास की जाँच करते थे, ग्रामों, हाटों और नगरों में (हाथियों के लिए) किये गये शस्य-संग्रह की सूचना दी।

यद्यपि स्कन्दगुप्त उदासीन था, तथापि स्वामी की कृपा प्राप्त होने से, बड़े पद पर होने से तथा स्वाभाविक गम्भीरता से वह मानो आदेश दे रहा था। वह समुद्रों को असंख्य हाथियों के कानों के लिए शंख देने को मानो आज्ञा दे रहा था। वह हाथियों के सिंगार के लिए गेरुआ रंग रूपी अङ्गराग संग्रह करने के लिए मानो पर्वतों का अपहरण कर रहा था। वह दिशाओं में दिग्गजों पर इन्द्र के ऐरावत का अधिकार मानो छीन रहा था। शिव के पैरों के भार से झुके हुए कैलास के समान भारी पगों से वह पृथ्वी का भार वहन करने का गर्व मानो चूर्ण कर रहा था।[2] चलते समय जाँघ तक लटकती हुई उसकी भुजाएँ इस तरह हिल डुल रही थीं, जैसे दोनों ओर हाथी बाँधने के शिला-स्तम्भ गाड़े

१—हाथी को शासन में रखने के लिए बनाई गई एक तरह की लाठी।

२—उसके पगों के भार से धरती धँस रही थी।

जा रहे हों। कुछ कुछ ऊँचा और लटकता हुआ अधर-बिम्ब, जो अमृत के समान सुरस और नव-पल्लव के समान कोमल था, सुलक्षणा हथिनी को लुभाने के लिए मानो कवल हो रहा था। उसकी नाक उसके राज-वंश के समान लम्बी थी। उसकी आँखें इतनी स्निग्ध, मधुर, धवल और विशाल लगती थीं, जैसे क्षीर-सागर का पान कर दिशाओं के विस्तार का पान कर रही हों। उसका ललाट-तट मेरु-तट से भी विशाल था। उसका केश-पाश, जो स्वभाव से ही कुञ्चित था और जिसकी कुछ लटें बाल-लता के समान हिल रही थीं, मानो निरन्तर छत्र-छाया के नीचे बढ़ने से अत्यन्त लम्बा काला तथा कोमल हो गया था और सूर्य-किरणों को भी मानो आलोक-हीन कर रहा था। यद्यपि शत्रु के विनाश से उसने धनुष चलाना छोड़ दिया था, तथापि चारों ओर उसके महान् गुणों[१] की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती थी।

मतवाले हाथियों की पूरी सेना उसके अधीन होने पर भी वह मद[२] से अछूता था। भूतिमान् होने पर भी वह स्नेहमय था।[३] पार्थिव होने पर भी वह गुणमय[४] था। वह मदस्रावी हाथियों की

१—ताँत (विरोध में), सद्गुण (विरोध-परिहार में)।

२—गज-मद, गर्व।

३—भस्ममय होने पर भी वह तेजमय था, ऐश्वर्यवान् होने पर भी स्नेही था।

४—पृथ्वी-परमाणु से बने होने पर भी वह तन्तुमय था, राजा होने पर भी गुणी था।

सेना के ऊपर था। भृत्य होने पर भी अपमानित नहीं होने के कारण वह स्वामी के समान स्पृहणीय था। वह प्रभु की उस कृपा-भूमि पर आरूढ़ था, जो एक ही स्वामी की भक्ति के कारण अचल थी तथा कुलांगना के समान दूसरों की पहुँच से बाहर थी। वह पण्डितों का अकारण बन्धु, भक्तों का अवैतनिक भृत्य, और विद्वानों का अक्रीत दास था।

राजकुल में प्रवेश करने पर दूर से ही उसने दोनों हाथ पृथ्वी पर टेक दिये और मस्तक से पृथ्वी का स्पर्श करते हुए प्रणाम किया। कुछ ही दूर पर उसके बैठने पर देव हर्ष ने उससे कहा—"आपने आर्य की हत्या का समाचार तथा मैं क्या करना चाहता हूँ यह सविस्तर सुना। अतः चरने के लिए निकले हाथियों को जल्द मँगाइये। आर्य के तिरस्कार की कष्ट-दायक आग प्रयाण का स्वल्प विलम्ब भी नहीं सह सकती है।" इस तरह कहे जाने पर स्कन्दगुप्त ने प्रणाम कर कहा—'स्वामी इस आदेश को पूरा हुआ समझें, स्वामि-भक्ति के कारण मुझे कुछ निवेदन करना है। देव इसे सुनें। आपने जो कुछ आरम्भ किया है वह पुष्पभूति-वंशज, कुलीनता, स्वाभाविक तेज, दिग्गज की सूँड़ के समान लम्बे भुज-युगल तथा असाधारण भ्रातृ-प्रेम के अनुरूप है। जब सर्प नामक क्षुद्र कृमि भी अपमान नहीं सहते हैं, तो आप-सरीखे तेजस्वियों का क्या कहना है? केवल देव राज्यवर्धन के वृत्तान्त से देव ने दुर्जन का कुछ दुराचार देखा। प्रति ग्राम में, प्रति नगर में, प्रति द्वीप में, और प्रति दिशा में लोगों के वेश, आकार, और

व्यवहार भिन्न-भिन्न होते हैं—यह स्वाभाविक है। इसलिए अपने देश के आचार के योग्य तथा स्वभाव से सरल हृदय में उत्पन्न होनेवाली यह सर्व-विश्वासिता तजिये। असावधानी के दोष से आनेवाली विपत्तियों के अनेक समाचार देव प्रति दिन सुनते ही हैं। पद्मावती नगरी में नागसेन नामक एक नागवंशी राजा था; मैना द्वारा उसकी मंत्रणा प्रकाशित की जाने पर उसका नाश हो गया[१]। सुग्गा द्वारा श्रुतवर्मा का रहस्य सुने जाने पर उसकी श्री श्रावस्ती में नष्ट हो गई। मृत्तिकावती में सपनाते हुए स्वर्णचूड़ के रहस्य का प्रकाशन उसकी मृत्यु का कारण हुआ। चूड़ामणि में प्रतिबिम्बित पत्र के अक्षर पढ़कर सुन्दर सुनहला चँवर पकड़नेवाली स्त्री यवनेश्वर का यम हुई। विदूरथ की सेना ने कृष्ण-पक्ष की रात में खजाना खोदकर निकालते हुए मथुरा के अत्यन्त लोभी राजा बृहद्रथ को खुली तलवार के प्रहारों से मार डाला। बनावटी हाथी के शरीर से निकलकर महासेन के सैनिकों ने वत्सपति (उदयन) को, जो हाथियों के जङ्गल में घूमने का आदी था, कैद कर लिया। नर्तकों के बीच रहकर मित्रदेव ने अग्निमित्र के नृत्य-प्रिय पुत्र सुमित्र के सिर को तलवार से मृणाल की तरह काट डाला। अश्मक का राजा शरभ, तन्त्री नामक

१—इस पारे में जिन कथाओं का उल्लेख है उनमें से अधिकांश, अर्थशास्त्र, कामन्दकीय नीतिसार, बृहत्संहिता, विष्णुपुराण तथा कथासरित्सागर में पाई जाती हैं।

बाजे का शौकीन था; संगीत-विद्या के छात्रों का वेष धारण कर दुश्मन के लोगों ने कद्दू की वीणा के भीतर रक्खे हुए तेज छुरों से उस राजा का सिर काट लिया। बल-प्रदर्शन के बहाने सारी सेना दिखाकर अनार्य सेनापति पुष्यमित्र ने अपने मूर्ख स्वामी मौर्य बृहद्रथ को पीस डाला। चण्डीपति आश्चर्यों (को देखने या जानने) के लिए बड़ा उत्सुक रहता था, कैदी यवनों के द्वारा बनाये गये आकाशगामी यन्त्र-यान से वह कहाँ पहुँचाया गया, पता नहीं। शिशुनाग-वंशी काकवर्ण का कण्ठ नगर के समीप तलवार से काटा गया। शुङ्ग-वंशी राजा (देवभूति) स्त्री-संग में अत्यन्त रत तथा काम-परवश था; उसके अमात्य वसुदेव के कहने से देवभूति की दासी की बेटी ने रानी का भेस धारण कर उस राजा का प्राणान्त कर दिया। मगध का राजा असुर-विवर[1] का व्यसनी था; मेकलाधिप के मन्त्री गोधन पर्वत के सुरङ्ग द्वारा जो अपरिमित रमणियों के मणिमय नूपुरों की झनकार से रमणीय था, उसे हरकर अपने देश को ले गये। महाकाल के उत्सव में प्रद्योत के छोटे भाई पौणकि[2]-कुमार, कुमार सेन को, जो नर मांस बेचने का समर्थन करने में उन्मत्त था,

---

१—अहि-विवर, सर्प-शाला, पाताल, खान, सुरङ्ग। 'असुर-विवर' के लिये देखिये दशकुमार-चरित, द्वि० उ० की प्रथम पंक्ति। असुरविवर = भूगर्भ की स्त्रियों के पास पहुँचने का मार्ग— ना० प्र० प० सं० २००२ वर्ष ५० अङ्क ३-४ पृ० १५१-५३।

२—पुणक या पुणकी का पुत्र।

तालजङ्घ नामक बेताल ने मार डाला। अनेक अन्य पुरुषों द्वारा अपनी ओषधियों के गुण प्रकाशित कर वैद्य-भेष-धारियों ने विदेह-राज के पुत्र गणपति को, जो रसायन रस के पीछे पागल था, राज-यक्ष्मा रोग उत्पन्न कर दिया। रानी के महल की दीवार में गुप्त रूप से पहुँचकर वीरसेन ने स्त्रियों के ऊपर विश्वास करनेवाले अपने भाई कलिङ्गराज भद्रसेन की हत्या की। माता के बिछावन के तोशक के नीचे बैठकर एक पुत्र ने (अपने पिता) करूषाधिपति दध्र की, जो दूसरे पुत्र का अभिषेक करना चाहता था, हत्या की। द्वारपाल से प्रीति करनेवाला चकोरेश्वर चन्द्रकेतु अपने सचिवों सहित शूद्रक-दूत द्वारा एकान्त में मार डाला गया। चामुण्डी का राजा पुष्कर शिकार का बड़ा शौकीन था; जिस समय वह गैंड़ों को मार रहा था उसी समय लम्बी डण्डी वाले नल के वन में छिपे हुए चम्पाधिप के सैनिकों ने उसका प्राणान्त कर दिया। चारणों से अनुराग करनेवाले मूर्ख मौखरि क्षत्रवर्मा को शत्रु-प्रयुक्त भाटों ने, जिनके मुख जय-शब्द से मुखर थे, मार डाला। शत्रु-नगर में दूसरे की स्त्री से प्रेम करनेवाले शक-पति को स्त्री के वेश में छिपे हुए चन्द्रगुप्त ने परलोक भेजा। प्रमदाओं के कारण असावधान व्यक्तियों से होने वाले प्रमाद आपने सुने ही हैं। जैसे—विष-लिप्त लावे से सुप्रभा ने अपने पुत्र के राज्य के लिए मदिरा से माते काशिराज महासेन की हत्या की। बनावटी कामावेश पैदा करके रत्नवती ने अयोध्यापति विजयी जारूथ को दर्पण से, जिसका किनारा क्षुर-धार के समान (तीक्ष्ण) था, मार डाला। देवर से

अनुराग करनेवाली देवकी ने कान के नीले कमल से, जिसका मकरन्द विष-चूर्ण से लिप्त था, सुह्म-राज देवसेन का वध किया। सौत की डाह से रानी ने योग-चूर्ण-विष-वर्षी मणि नूपुर से विरन्ति-राज रन्तिदेव की हत्या की। बिन्दुमती ने केश-पाश में छिपाये शस्त्र से वृष्णि-वंशी विदूरथ को मार डाला। हंसवती ने मेखला-मणि से, जिसका मध्य-भाग विष से लिपा था, सौवीर-राज वीरसेन का वध किया। अपने मुख के भीतरी भाग में अदृश्य विष-नाशक ओषधि का लेप लगाकर पौरवी ने विष-मिश्रित मदिरा का कुल्ला पिलाकर पौरवेश्वर सोमक की हत्या की।" इतना कहकर वह रुक गया और स्वामी का आदेश पालन करने के लिए निकल गया।

देव हर्ष ने राज्य की सारी व्यवस्था की। तब वह अपनी उस प्रतिज्ञा के अनुसार दिग्विजय के लिए प्रयाण करने का आदेश दे ही रहा था कि गतायु[१] विपक्षी सामन्तों के घरों में तरह तरह के दुर्लक्षण फैलने लगे। चञ्चल काले (रंग विरंगे) मृगों की कतारें इधर उधर घूमने लगीं, जैसे समीपवर्ती यमदूतों की दृष्टियाँ हों। आँगन में मधुमक्खियाँ भनभनाने लगीं, जैसे घर से निकली लक्ष्मी के नूपुर बज रहे हों। अशुभ शृगालों ने, जिनके खुले विकराल मुँहों से आग निकल रही थी, दिन में भी देर तक अमङ्गल-सूचक कर्कश शब्द किया। जंगली कपोत, जिनके पक्ष-मूल (डैनों की जड़ें)

१—जिनकी आयु पूरी हो चुकी हो, जो शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होंगे।

कपि-शावक के कपोल के समान भूरे थे, उतरने लगे, जैसे उन्हें मुर्दे के मांस से रुचि उत्पन्न हो गई हो। उपवन-तरुओं ने मानो (विपक्षी सामन्तों को) विदा देते हुए एक ही साथ अकाल-कुसुम धारण किये। सभा-भवन की मूर्तियाँ काँपते हाथों से अपने पयोधरों को पीटते हुए सहसा रो उठीं। योद्धाओं ने दर्पणों में अपने को मस्तक-रहित देखा, उनके मस्तक मानो शीघ्र ही केश पकड़े जाने के भय से भाग गये थे। रानियों की चूड़ामणियों (शिरोरत्नों) में चक्र, शङ्ख और कमल से चिह्नित पदाङ्क दिखाई पड़े। दासियों के चँवर उनके हाथों से अकस्मात् गिर पड़े। प्रणय-कलह में भी पीठ देकर वीरगण मानिनियों से देर तक विमुख हुए। हाथियों के गण्ड-स्थलों पर भौंरों का मद पीने का जमघट टूट गया। घोड़ों ने हरी नई घास के गुच्छे भी नहीं खाये, जैसे यममहिष की गन्ध सूँघकर वे थक रहे हों। बालिकाओं ने ताल दिया और उनके चञ्चल कङ्कण बज उठे, तो भी सुस्त घरेलू मोर नहीं नाचे। प्रत्येक रात में उन्मुख होकर, मानो चन्द्रमा के हरिण को एक टक से देखते हुए, कुत्ते तोरण के समीप जोर जोर से अकारण ही भूँके। डराने के लिए अपनी तर्जनी अँगुली कँपाती हुई, मानो शीघ्र ही मरनेवाले व्यक्तियों को गिनती हुई, नग्न स्त्री दिन भर रास्ते रास्ते घूमने लगी। घर के तल पर नये तृण उग आये, जो हरिण के खुर पर के कुटिल रोम के समान तरंगित लगते थे।

सैनिक नारियों के मुख-कमलों के प्रतिबिम्ब, जो वेणीबन्धन से युक्त थे और जो अञ्जन रहित आँखों के कारण निष्प्रभ थे,

पात्रों की मदिरा में दिखाई पड़े। पृथ्वी मानो अपने भावी अपहरण से चकित होकर काँप उठी। शूरों के शरीर पर विकसित बन्धूक फूल के समान लाल रुधिर की वृष्टि हुई, जैसे वध्य व्यक्ति को अलङ्कृत करने के लिए लाल चन्दन-रस का अनुलेप हो। निरन्तर दीप्त होते स्फुलिङ्गों और अंगारों की वृष्टि से ताराओं को जलाती हुई प्रज्वलित उल्काओं की राशि लगातार गिरती रही, जैसे नाशोन्मुखी श्री को अग्नि से घेर रही हो। पहले से ही प्रतिहारी की भाँति घर घर से चँवर, छत्र, और व्यजन छीनती हुई प्रचण्ड आँधी चलने लगी।

श्री बाणभट्ट-कृत हर्षचरित में राजप्रतिज्ञा-वर्णन
नामक षष्ठ उच्छ्वास समाप्त।

सप्तम उच्छ्वास

१—कृतप्रतिज्ञ वीर के लिए पृथ्वी आँगन की वेदी है, सागर क्षुद्र सरिता है, पाताल स्थली है, और सुमेरु पर्वत वल्मीक-स्तूप है।

२—बाहुशाली व्यक्ति के धनुष धारण करने पर पर्वत जो नहीं झुक जाते (हैं), यही आश्चर्य है। फिर बेचारे कौओं को शत्रुओं में गिनना ही क्या है?

अनन्तर कुछ दिनों के बीतने पर ज्योतिषियों ने सौ सौ बार प्रशस्त दिवस की अच्छी तरह गणना की। चारों दिशाओं के विजय-योग्य प्रयाण-लग्न निश्चित हुआ। शरत्कालीन मेघों के समान जल बरसाने वाले चाँदी और सोने के घड़ों से हर्ष ने स्नान किया। परम भक्ति से भगवान् शिव की पूजा की। अग्नि में हवन किया, जिसकी शिखाएँ दाईं ओर होती हुई ऊपर उठती थीं। द्विजों को चाँदी सोने और रत्नों के सैकड़ों तिल-पात्र तथा करोड़ों गाएँ, जिनके खुर और सींगों की नोकें सुवर्ण-पत्र-लताओं से मढ़ी थीं, दीं। बिछे हुए बघछाले के आसन पर बैठकर पहले अपने शस्त्रों का लेप किया और फिर अपने यश के समान धवल चन्दन से पाँवों तक शरीर का। अपने योग्य दुकूल, जो राजहंस-मिथुनों के चिह्न से युक्त थे, पहने। शिर पर सफेद फूलों की मुण्ड-

माला बनाई, जैसे परमेश्वर[1] का चिह्न चन्द्र-कला हो। कान पर गोरोचना से लिप्त हरी दूब रखी, जैसे कान के आभूषण मरकत मणि की किरणें हों। प्रकोष्ठ पर मुद्रा-वलय के साथ यात्रा-काल का मङ्गल-कङ्कण धारण किया। पूजित और प्रसन्न पुरोहित के हाथ से छींटे जाते हुए शान्ति जल-कणों से अपने शिर को सिक्त किया। बहुमूल्य वाहन भेजकर राजाओं के बीच आभूषण बाँटे, जिनके प्रचुर रत्नों के आलोक से दिशाएँ लिप्त होती थीं। दुःखी दरिद्रों और कुलपुत्रों को प्रसन्नतापूर्वक दान दिया। कैदियों को छोड़ दिया। अपने भुज-स्तम्भ को, जो उस समय का[2] स्मरण कर फड़कते हुए अपने को मानो निवेदन कर रहा था, अठारह द्वीप जीतने के काम में नियुक्त किया। सेवकों के समान सभी सुलक्षण भी स्पर्धा करते हुए आगे होने लगे। प्रमुदित प्रजा ने 'जय जय' शब्द किया और वह घर से ऐसे निकला, जैसे ब्रह्मा ब्रह्माण्ड से सत्य-युग की स्थापना के लिए।

नगर के निकट ही सरस्वती नदी के किनारे तृण के बने बड़े घर में वह ठहर गया। वहाँ ऊँचा तोरण उठाया गया था, वेदी पर पल्लव से भूषित सुवर्ण-कलश रखा था, वन-मालाएँ बँधीं थीं, धवल ध्वजाएँ उड़ रहीं थीं, सफेद वस्त्र पहने हुए लोग घूम रहे थे, द्विज पाठ कर रहे थे। जब वहाँ वह ठहरा हुआ था, तो गाँव के

१—राजा; शिव। २—प्रतिज्ञा समय।

पटेल ने सभी किरानियों के साथ आकर 'सफल-शासन देव आज ही शासन का श्रीगणेश करें' यह कहते हुए सोने की एक नई मुहर, जिस पर वृषभ का चिह्न था, अर्पण की। राजा ने उसे ले लिया। उसके कर-कमल से पृथ्वी पर पहले ही से रखे हुए मृत्पिण्ड (मिट्टी के लोंदे) पर मुहर अधोमुखी होकर गिर पड़ी और सरस्वती-तीर के कुछ-कुछ सूखे कोमल-पङ्क पर अक्षरों की पंक्तियाँ स्पष्ट अङ्कित हुईं। अमङ्गल की आशङ्का से जब परिजन विषाद करने लगे तो राजा ने सोचा—'मूर्खों की बुद्धि तत्त्व को नहीं देखती। एक शासन (एकाधिपत्य) की मुहर से अङ्कित पृथ्वी आपकी होगी, लक्षण से इस तरह सूचित होने पर भी गँवार कुछ और ही समझ रहे हैं।' इस महालक्षण का इस तरह मन से अभिनन्दन कर उसने हजार हलों से नापे गये सौ गाँव ब्राह्मणों को दिये और उस दिवस को वहीं बिताया। रात होने पर सभी नृपों का सम्मान कर वह सो गया।

अनन्तर समस्त प्राणियों के सोये रहने से निःशब्द तीसरे पहर के बीतने पर प्रयाण-पटह बजाया गया, जिसकी आवाज दिग्गज के बढ़ते हुए गर्जन के समान गम्भीर थी। एक मुहूर्त ठहरकर फिर से प्रयाण-क्रोशों की संख्या बतानेवाली आठ स्पष्ट चोटें जोर-जोर से पटह पर दी गईं।

कूच के समय पटह, नान्दीक, कुञ्ज, नगाड़े और शंख बजे। धीरे धीरे सैनिकों का कलकल बढ़ने लगा। कर्मचारीगण परिजने

के उठाने में व्याप्त हुए। द्रुघण की तेज चोट तथा ढोल बजाने की लकड़ियों के कोलाहल से दिशाएँ भर गईं। सेनापतियों ने कुल-पुत्रों को इकट्ठा किया। लोगों द्वारा जलाये गये सैकड़ों उल्मुकों के आलोक (लुआठियों की रोशनी) से रात्रि का अन्धकार लुप्त हो गया। पहरा करनेवाली दासियों की पद-ध्वनि से प्रेमी-युगल जगाये गये। सेनापतियों के रूखे आदेश से उन्निद्र महावतों की आँखें खुल गईं। जगे हुए हाथियों ने हस्ति-शालाएँ खाली कर दीं। सोकर उठे हुए घोड़ों ने कंधे पर के बाल हिलाये। गूँजते पड़ाव में मुखर खनित्रों से पृथ्वी पर के बन्धन काटे गये। कील उखाड़े जाने से जंजीरें झनझनाईं। हटाई जाती हुई बन्धन-शृंखलाओं की आवाज से उत्ताल तुरंगों ने अपने खुर-पुट कुटिल कर लिये। महावतों ने मदस्रावी हाथी खोल दिये, जिनकी बन्धन-शृंखलाओं के खनखन निनाद से दशों दिशाएँ बिल्कुल भर गईं। घास के पूलों के प्रहार से हाथियों की पांसुल पीठें पोंछी गईं और उन पर विकसित चमड़े पसारे गये। घर की चिन्ता करनेवाले नौकरों ने तम्बू, कनात, शामियाने, पर्दे और चंदोवे समेटे। चमड़े के चिपटे थैले कीलों से भरे गये। भण्डारियों ने भण्डार की वस्तुएँ इकट्ठी कीं। बहुतेरे हथवाहों को भण्डार ढोना पड़ा। सामन्तों के निवास कोश-कलसों से खचाखच भरे थे, ये महावतों द्वारा निश्चित किये गये अनेक हाथियों पर लादे गये। यात्रा-कुशल दासों ने दुष्ट हाथियों के ऊपर तेजी से सामान बोझे। पीछे पड़ी हुई तोंद वाली पराधीन कुटनी को दोनों ओर

झुकते हुए नौकरों ने हाथों के सहारे कठिनाई से खींचा, इससे लोग हँस पड़े। रंगबिरंगे पलानों के रस्से कसे जाने से जिन बहुतेरे बड़े बड़े मतवाले हाथियों का स्वच्छन्द अङ्ग-सञ्चालन रुक गया था, वे गरजे। झुण्ड के झुण्ड हाथियों की घण्टाओं के टंकार से कानों को ज्वर चढ़ आया। पीठ पर बोरे लादे जाने के क्लेश से ऊँट बोल उठे। कुलीन राजपुत्रों द्वारा भेजे गये कुप्रयुक्त व्यक्तियों से कुलीन कुलपुत्रों की स्त्रियों की सवारियाँ भर गई। महावत यात्रा-काल के प्रवञ्चित नये सेवकों की खोज में थे। राज-प्रसाद से प्रसिद्धि पाये हुए पैदल सैनिक राजा के प्रिय श्रेष्ठ घोड़े ले गये। सुन्दर सैनिकों ने अग्रगामी सैनिकों को उनकी शोभा के लिए गाढा लेप लगाया। अश्वपालों के पलानों पर लकड़ी की बनी मृगाकृति, घंटी, और लाठी लटक रही थी; तथा उरः-पट्टिका बँधी थी। लगाम लगाने में फँसे हुए साईसों के घोड़ों के बीच (मङ्गल-सूचक) वानर लाकर रखे गये।[१] साईसों ने प्रभात-काल में खाने योग्य अंकुर, जो आधा खाया जा चुका था, खींच लिया। आपस में बोलने से घास वालों की आवाज बढ़ गई। यात्रा-काल में शीघ्रता से घूमते हुए तरुण तुरंगमों ने, जिनके मुँह ऊपर उठे हुए थे, कई स्तबलों को तोड़ दिया। सज्जित हथिनियों के महावतों की पुकार पर सुन्दरियों ने सत्वर उन (हथिनियों) के

१—घोड़ों के साथ बन्दर रखने की प्रथा के लिए देखिये—ना० प्र० प० सं० २००४ वर्ष ५२ अङ्क पृष्ठ ८२ ८३।

मुखों पर (सिन्दूर आदि का) लेप लगाया। हाथियों और घोड़ों के कूच करने पर दौड़कर आये हुए आस पास के छोटे लोगों ने बचे हुए अन्न की ढेर लूटी। वस्त्र-राशि से लदे हुए गधे चल पड़े[१]। पहियों से चीत्कार करती हुई गाड़ियाँ प्रहत मार्ग पर आईं। बैलों पर सहसा बर्तन लादे गये। बलवान् बैल, जो पहले ही भेजे गये थे, पास के घास के लोभ से विलम्ब कर रहे थे। महासामन्तों के रसोई के सामान पहले भेजे गये। पताका-धारी सैनिक आगे आगे दौड़े। सैकड़ों प्रिय वचन बोलकर सैनिक-गण संकीर्ण कुटियों के बीच से निकल पाये। हाथियों द्वारा पद-दलित कुटियों से निकले लोगों ने ढेलों से महावतों को मारा, जिन (महावतों) ने पास के लोगो को गवाह रखा। सैन्य-संघर्ष से नष्ट हुई तृण की कुटियों से छोटे छोटे परिवार भाग गये। जब कलकलरूप उपद्रव के कारण दौलत से लदे बैल दौड़ पड़े तो बनिये भी उनके पीछे दौड़ने लगे। आगे जानेवाले दीपों के आलोक से लोगों की भीड़ कम होने पर अन्तःपुर को ढोनेवाली हथिनियों ने प्रस्थान किया। घुड़सवारों ने देर करते कुत्तों को पुकारा। जिनके पाँव तेजी से पड़ रहे थे और जो निश्चल होकर जा रहे थे उन ऊँचे तरुण घोड़ों पर आराम अनुभव करते हुए वृद्धों ने उनके गुणों की स्तुति की। टट्टुओं पर से गिरने के

१—या, इधर उधर घूमते हुए लड़के गधों के पीछे पीछे चल पड़े।

कारण दाक्षिणात्य अश्वारोही दुःखी थे[१]। संसार धूल से ढक गया।

राज-द्वार सामन्तों से भर गया। प्रत्येक दिशा से वे हथिनियों पर चढ़कर आ रहे थे। महावत सुवर्ण-पत्रों से चित्रित धनुष ऊपर उठाये हुए थे। बीच में बैठे स्वजन तलवार पकड़े हुए थे। तमोली चँवर डुला रहे थे। पीछे में बैठे हुए परिजनों के जिम्मे तरकस-बन्द तीर थे। पलान पत्र-लताओं से कुटिल लगते थे और सोने के नलों[२] से शोभित थे। पलान के रस्से से उपधान निश्चल बँधा था, जिससे वे स्थिर हो कर बैठे थे। रकाबों के झूलने से पाँव के कड़ों में खचित रत्नों का शब्द बढ़ रहा था। बेल-बूटेदार रेशमी कपड़े से उन की टाँगें उचित स्थान पर ढकी थीं। मटियाले कपड़े से उनके भूरे पाँव रंग-बिरंगे लगते थे। भ्रमर-सदृश काले और चिकने वस्त्र-अञ्चल के कारण सफेद रंग निखर उठता था। गोरे शरीरों पर विराजमान काले हीरों से उनके कञ्चुक[३] काले लगते थे। वे चीन के बने चोलक[३] पहने हुए थे। उनके स्तवरकों[३] और वारवाणों[३] पर विशुद्ध मोतियों के गुच्छे लगे थे। विविध रंग से उनके कूर्पासक[३] रंग-बिरंगे लगते थे। उनकी चादरों की कान्ति सुग्गे की पंख की सी थी। व्यायाम से

१—दक्षिण देश में टट्टू नहीं होते हैं।

२—'नल' से तीर या तरकस का बोध हो सकता है।

३—एक तरह का पहनावा।

कसे हुए कटि-प्रदेशों में सुन्दर शस्त्र घुसे थे। तेज गति के कारण हिलती हार-लताओं में उलझे हुए चञ्चल कुंडलों को छुड़ाने के लिए परिजन दौड़ पड़े। सोने के कर्णफूलों से टकराते हुए कर्ण-भूषण मुखर थे। कान के नीले कमलों के नाल उनकी पगड़ियों से दबे थे। कुंकुम से रंगे कोमल चादरों से उनके मस्तक ढके थे। शिर पर के रेशमी वस्त्र चूड़ा-मणि के खंडों से खचित थे। शिर पर मँडराते हुए भ्रमर-पटल मोर के पंख हो रहे थे। उनके तरुण हाथियों द्वारा ढोये जाते हुए हौदे मार्ग में रंग-बिरंगे हो गये थे। उनके उड़ते हुए चंचल और भयानक सैनिकों से, जिनके आगे चँवर चल रहे थे और जो कार्दरंग देश के चित्रविचित्र ढालों से मंडित थे, पृथ्वी भर गई। उनके उछलते हुए सैकड़ों काम्बोज घोड़ों के सुवर्ण-आभूषणों की झनकार से दिशाएँ मुखर हो गईं। निर्दयतापूर्वक पीटे जाते हुए शत शत नगाड़ों की तीक्ष्ण ध्वनि से उन्होंने लोगों के कान बहरे कर दिये। उन सामन्तों के नाम घोषित हुए और उन्मुख पैदल सैनिकों ने उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा की।

भगवान् सूर्य के उदय होने पर राजा के सज्जित होने के समय की घोषणा करनेवाला संकेत-शंख बार बार बजा। कुछ ही देर के बाद राजा अपने प्रथम प्रयाण में ही दिग्विजय करने के लिए निकल पड़ा। वह एक हथिनी पर सवार था, जो चलने के कारण चञ्चल कानों के हिलने-डुलने से मानो दिग्गजों को एकत्र कर रही थी। राजा के ऊपर एक मंगल-आतपत्र था, जिसका दंड वैदूर्यमणि

का था, जिसके ऊपर पद्मराग के टुकड़े जड़े थे, और जो मानो सूर्योदय देखने के कोप से लाल हो रहा था। कदली के भीतरी भाग से भी कोमल कञ्चुक, जो नये रेशम का बना था, देह पर पहनने से वह द्वितीय सर्पराज के समान लगता था। क्षीर-सागर के फेन-पटल-सदृश धवल वस्त्र धारण करने के कारण[1] वह अमृत-मथन-दिवस-सा जान पड़ता था। बालक होने पर भी वह इन्द्र का समकक्षी हो गया था, जैसे बाल पारिजात-पादप नन्दन-वन में लगा हो। चलते चँवरों से हिलते कर्ण-कुसुमों की रज से, मानो सकल भुवनों को वश में करने के चूर्ण से, वह दिशाओं को लिप्त कर रहा था। सामने की चूड़ामणि में जिसका सुनहला प्रतिबिम्ब पड़ रहा था, उस उगते हुए सूर्य को भी वह मानो अपने तेज से पी रहा था। सिन्दूर-सदृश ताम्बूल-रस से उसकी ओष्ठ-मुद्रा इतनी लिप्त थी कि वह अपने सभी द्वीप मानो अनुराग को दान कर रहा था[2]। चमकती मुक्तावलियों से (चारो ओर) किरणें निकल रही थीं, इस तरह वह दिशाओं से भी मानो (किरणरूपी) चँवर पकड़वा रहा था। वह अपनी भ्रूलता से, जिसका त्रिभाग राजाओं के देखने में ऊपर उठा था, तीनों लोकों को मानो कर

१—क्षीर-सागर के फेन-पटल से धवल आकाश वाला (दिवस के पक्ष में)।

२—प्राचीन समय के दान-पत्र सिन्दूर की मुद्रा से चिह्नित रहते थे। अनुराग = लालिमा; भक्ति।

देने के लिए अनायास आज्ञा दे रहा था। वह अपने लम्बे बाहु-प्राकार से सातों सागररूपी महागर्तों को मानो रक्षा करने की इच्छा से घेर रहा था। क्षीर-सागर का मानो सारा माधुर्य लेकर उठी हुई लक्ष्मी ने उसका गाढ़ आलिंगन किया। कुतूहल-वश सैनिकों ने अपनी हजारों आँखें उठाकर उसका इस तरह पान किया जैसे वह अमृतमय हो। वह अपने गुणों के भार से राजाओं के स्नेहार्द्र हृदयों में डूब रहा था और अपने सौभाग्य-रस से दर्शकों को लेप रहा था। इन्द्र[1] के समान वह अग्रज-वध रूपी कालिमा धोने को उत्सुक था। पृथु के समान पृथिवी को परिशुद्ध करने के विचार से उसने सभी भूभृतों का उत्सारण किया[2]। सूर्य की किरणों के समान सहस्रों दंडधारी पुरुष 'जय जय' शब्द करते हुए उसके आगे आगे जा रहे थे और जन-समूह को हटा रहे थे। वे कर्तव्य-पालन करने में निपुण थे, अतः उनके पाँव तेजी से चल रहे थे। वे व्यवस्था की रक्षा करने में निष्ठुर थे। उन्होंने भय से भागते हुए लोगों की भीड़ से ओझल हुई दशों दिशाओं को मानो पकड़वा दिया। फहराती हुई अगणित पताकाओं से हवा का चलना बन्द करके उन्होंने उसे भी मानो विनय सिखाई। द्रुत-गामी पाँवों से

१—इन्द्र ने त्वष्टृ के पुत्र वृत्र की हत्या की थी, जो ब्राह्मण होने के नाते उसका अग्रज था।

२—सभी राजाओं को सञ्चालित किया (हर्ष के पक्ष में); सभी पर्वतों को हटाया (पृथु के पक्ष में)।

उठे हुए धूलि-पटल से ढकी सूर्य-किरणों को भी उन्होंने मानो हटा दिया। सोने की बनी वेत्र-लताओं के आलोक से तिरस्कृत दिवस को भी उन्होंने मानो दूर किया।

चलने के कारण सुवर्ण-मुकुटों की ढीली हुई मणियों की किरणें पड़ने से जिनके शिर सुन्दर लगते थे और जिनके कुसुम-शेखरों से पराग झड़ रहा था, ऐसे राजाओं ने जब डरते हुए चित्त से अपने शरीर झुकाकर प्रणाम किया, तो उनकी प्रभावर्षी चूड़ा-मणियों की किरणें ऊपर नीचे और अगल-बगल फैल गईं, मानो चाष नामक पक्षियों की पंक्तियाँ सु-शकुन संपादन करने के लिए चलीं। जब ये (किरणें) घरेलू मोरों के समान मेघ-सदृश धूलि-पटल से ढके आकाश में उड़ीं, तो जान पड़ा जैसे दिक्-पाल अपने द्वारों पर कल्प-पादप के कोमल-पल्लवों की वन्दन-मालाएँ बाँध रहे हों। राजाओं द्वारा प्रणाम किये जाते हुए वीरों के वीर हर्ष ने उनके सम्मानमय प्राण—यथोचित प्रणय-दान से, दृष्टि-त्रिभाग से, कटाक्ष से, समग्र दृष्टि से, भ्रू-भङ्गिमा से, मन्द मुसकान से, परिहास से, वक्रोक्ति से, कुशल-प्रश्न से, प्रति-प्रणाम से, भ्रू-सञ्चालन से तथा आज्ञा-दान से—मानो खरीद लिये।

राजा के प्रस्थान करने पर नगाड़ों की तेज प्रतिध्वनि दिशाओं में जहाँ तहाँ फैल गई, जैसे कलकल से डरे हुए दिग्गजों का सूत्कार हो। दिग्गजों के प्रति क्रुद्ध हाथियों के तीन तीन अवयवों से मद-प्रवाह निकले, जो अलि-कुल से काले होकर यमुना की सहस्र धाराओं के समान दीखते थे। सिन्दूर-राशि से सूर्य-मण्डल के

अरुण हो जाने पर चक्रवाक आदि पक्षियों को संध्या होने की आशङ्का हुई। हाथियों के कानरूप करताल के शब्द से, जो भौंरों के कोलाहल से बढ़ गया था, दुन्दुभियों की ध्वनि तिरोहित हो गई। बार बार डुलाया जाता चामर-समूह सचराचर विश्व को निगल गया। घोड़ों के हाँफने से निकले फेन-पिण्डों से, जो सिन्धुवार फूलों की माला के समान सफेद थे, समूचा अन्तरिक्ष सफेद हो गया। सोने के ऊँचे दण्ड वाले आत-पत्रों ने, जो तगर फूलों के गुच्छों के ढेर के समान सफेद थे तथा जिनके पारस्परिक संघर्षण से आठों दिशाएँ अदृश्य हो गई थीं, दिवस को मानो पी लिया। धूलिरूप रात्रि से बन्द हुआ दिवस मुकुट-मणियों के (प्रभात-कालीन) अभिनव आलोक से खिल उठा। चाँदी और सोने के बजते हुए अश्व-आभरणों के निनाद से दिशाएँ बधिर हो गईं। हाथियों ने मानो शत्रु का प्रतापानल निर्मूल करने के लिए मद-जल के गर्म छींटों से दिशाओं को सिक्त किया। चूड़ामणियों की किरणों ने, जो बिजली के समान चञ्चल थीं, आँखों की खुलने की शक्ति हरण कर ली। अपनी सेना से स्वयं राजा भी विस्मित हुआ। चारों ओर दृष्टि-पात करते हुए उसने शिविर से निकलते सैन्य-समूह को देखा, जो युगारम्भ में विष्णु के उदर से बाहर होते जीव-लोक के सदृश था, अगस्त्य के मुख से निकलकर संसार को प्लावित करनेवाले सागर के समान था, अर्जुन के हजारों बाहु-दण्डों से दबाये जाने के बाद फिर से उन्मुक्त होकर सहस्रधा चलते हुए नर्मदा-प्रवाह के समान था। इसी बीच आपस में तरह तरह

का आलाप हो रहा था। जैसे—'तात, आगे बढ़ो।' 'महाशय, देर क्यों करते हो।' 'घोड़ा दौड़ रहा है।' 'भद्र, लंगड़े की तरह क्यों चलते हो जब कि ये आगे चलनेवाले वेग-पूर्वक हमारे ऊपर आ रहे हैं?' 'ऊँट को क्यों हाँक रहे हो? अरे निर्दय, क्या सोये हुए इस छोटे बच्चे को नहीं देखते हो?' 'वत्स, रामिल, समीप आओ जिससे धूल में नष्ट न हो जाओ।' 'देखते नहीं हो कि सत्तू का बोरा चू रहा है? ऐसी शीघ्रता क्यों करते हो?' 'बैल, रास्ता छोड़कर घोड़ों के बीच दौड़ रहे हो।' 'धीवर-कन्या, क्या आ रही हो?' 'हथिनी, तुम हाथियों के मार्ग पर जाना चाहती हो।' 'अङ्क, चने का थैला तिरछा होकर गिर रहा है, मेरी बात नहीं सुनते हो।' 'कुमार्ग से गढ़े में उतर रहे हो।' 'स्वेच्छाचारिणि, (अब) सुख से रहो; सौवीरक, घड़ा फूट गया।' 'मन्थरक, रास्ते में ऊँख खाओगे; बैल को हाँको।' 'चेट, कब तक बेर चुनोगे; दूर जाना है।' 'द्रोणक, क्या आज ही दौड़ रहे हो; यात्रा लम्बी है।' 'एक दुष्ट के अभाव में हमें ठहरना होगा।' 'आगे का रास्ता ऊँचा-नीचा है; स्थावरक, गुड़ का बर्तन फोड़ना नहीं।' 'गण्डक, चावल का बोझ बहुत भारी है, बैल नहीं ढो सकता है।' 'दास, उर्द के उस खेत में हँसिये से एक पूला घास जल्द काट लो। हम लोगों के चले जाने पर घास की बात कौन जान सकता है?' 'धव, बैलों को रोक लो; इस खेत पर रखवारे हैं।' 'गाड़ी पीछे पड़ गई; एक अच्छा-सा धुरंधर बैल जुए में लगाओ' 'यक्षपालित, तुम स्त्रियों को रौंद रहे हो; क्या तुम्हारी आँखें फूट गईं?' 'अरे

हत-बुद्धि महावत, हाथी की सूँड़ पर खेल रहे हो ?' 'अरे मतवाले जन्तु, इसे कुचल दो।' 'भाई, कीचड़ में फँस रहे हो ?' 'दीन-बन्धो, इस बैल को पङ्क से उबारो।' 'माणवक, इधर आओ; हाथियों के इस घने झुण्ड में निकलने का रास्ता नहीं है।'

कहीं बचे हुए प्रचुर शस्य को स्वेच्छा से मलकर अनायास निकाले गये अन्न से परितृप्त क्रीड़ा-प्रिय हथवाहे, अविवाहित, मूर्ख, गर्दभ-दास, जन-परिचारक, चोर, दास, धूर्त, अश्व-रक्षक और वेश्या-पुत्र, किलकिलाते हुए, सैन्य की प्रशंसा कर रहे थे। कहीं दीन असहाय कुल-पुत्र नीच ग्रामीणों से कष्ट-पूर्वक प्राप्त दुबले बैलों पर पाथेय ढोने की थकावट से ऊबकर स्वयं ही अपने घरेलू सामान लिये हुए थे और किसी प्रकार यह यात्रा समाप्त हो, तृष्णा पाताल-तल में चली जाय, प्राणियों का जन्म न हो, यह सेवा हमारा मङ्गल करे, दुःख-राशि सैनिक-वृत्ति से विदा' कहते हुए सैन्य की निन्दा कर रहे थे। राजा के भार ढोनेवाले नौकर पंक्ति-बद्ध होकर अत्यन्त तेजी से जा रहे थे, 'जैसे प्रखर जल-धारा पर चलती नावों में वे बांध दिये गये हों; उनके काले और कठोर कंधे पर भारी दण्ड रक्खे थे; वे सोने के पाद-पीठ, करङ्क, कलश, पिकदान और स्नान-द्रोणी लिये हुए थे तथा समीपवर्त्ती राजा के सामान ढोने के गर्व से उद्धत होकर सभी को निकाल रहे थे। पाक-शाला की सामग्री ढोनेवाले आगे के लोगों को हटा रहे थे; उन्होंने शूकर-चर्म से छाग बांध रक्खे थे; उनके कन्धों से हरिण के अग्रभाग तथा चटकाओं के गुच्छे लटक रहे थे; वे

बच्चे खरगोश, शाक, तथा वंशांकुर के संग्रह लिए हुए थे; उनके जिम्मे गोरस के भाण्ड थे, जिनके मुख सफेद कपड़े से ढके थे और जो ऊपर में आर्द्र मुद्रा लगाई जाने से सुरक्षित थे; वे लोहे के चूल्हे, तापक, तापिका, हस्तक (शूल), ताँबे के बर्तन, कड़ाह और छोटे भाण्ड ढो रहे थे। कहीं पग-पग पर गिरते हुए दुर्बल बैलों को ले चलने में नियुक्त किये गये मुखर नौकर 'क्लेश हमें हो रहा है और फल-काल में दूसरे ही धूर्त उपस्थित होंगे'—कहते हुए सभी कुल-पुत्रों को खिन्न कर रहे थे। कहीं राजा को देखने के कुतूहल से दोनों ओर से ग्रामीण जनता तेजी से दौड़ आई, रास्ते के गाँवों के आग्रहारिक[१] मूर्ख, जिनके आगे बूढ़े 'महत्तर' जलपूर्ण कलश उठाये हुए थे, दही, गुड़, खांड, फूल और वर्तन का उपहार तथा धन से भरे बक्स लेकर जब वेगपूर्वक निकट आये, तो क्रुद्ध और प्रचण्ड दण्ड-धारी पुरुषों द्वारा हराये जाने पर भागकर दूर जाने पर भी गिरते-पड़ते, राजा की ओर दृष्टि गड़ाये, पहले के प्रान्तीय शासकों के काल्पनिक दोष प्रकट करते हुए, भूतपूर्व सैकड़ों 'आयुक्तक' अधिकारियों की प्रशंसा करते हुए तथा 'चाटों'[२] के चिरंतन अपराध बताते हुए उन्होंने धूलि-पटल

१—'अग्रहार' दान का उपभोग करनेवाले। "अग्रं ब्राह्मण-भोजनं तदर्थं ह्रियन्ते राजधनात् पृथक् क्रियन्ते तेऽग्रहाराः ग्रामादयः"—म० भा०, व० प०, अ० ६८, नीलकण्ठी व्याख्या।

२—धूर्त, अस्थायी सैनिक।

उड़ाया। कहीं एकान्त में चलते हुए घुड़सवार गौड़-राज के आगमन की चर्चा कर रहे थे, जिसकी आशङ्का से शस्यरक्षा की माँग की जा रही थी। राजा द्वारा रक्षक नियुक्त किये जाने से संतुष्ट होकर कुछ लोगों ने 'राजा साक्षात् देवता हैं' कहते हुए स्तुति की। पका हुआ शस्य काटे जाने से विषाद प्रकट करते हुए कुछ लोग खेत के शोक से सकुटुम्ब बाहर निकल आये और प्राण-विनाश की पीड़ा अनुभव करते हुए परिताप के कारण भय छोड़कर 'राजा कहाँ है ? कहाँ का राजा ? या कैसा राजा ?' कहते हुए नरनाथ की निन्दा करने लगे। तेजी से चलनेवाले प्रचण्ड-दण्ड-धारी पुरुष इधर-उधर दौड़ते हुए खरगोशों को, जिनसे सेना में कलकल उत्पन्न हो गया, खोज खोजकर ढेलों की तरह पग-पग पर पीट रहे थे। एक साथ दौड़कर आये हुए खरगोशों को लोगों ने एक-एक करके पकड़ लिया, अनेक जन्तुओं की टाँगों के बीच से निकलने में निपुण शशक वक्रचाल से बहुतेरे घुड़-सवारों के कुत्तों को ठगकर ढेलों, लाठियों, कोणों, कुठारों, कीलों, कुदालों, खन्तियों, दात्रों और यष्टियों की वृष्टि होती रहने पर भी अपने आयु-बल से निकल गये। झुण्ड के झुण्ड साईसों के दौड़ने से धूल का बादल उड़ रहा था; भूसे और धूल से धूसर हुई उनकी जाँघें घास के जालों से ढकी थीं; उनके पुराने पलानों के एक छोर से हंसिये लटक रहे थे; उनके ढीले और मैले कम्बल पुराने ऊन के टुकड़ों के बने थे; वे स्वामियों की कृपा से प्राप्त फटे चिथड़े और कुर्त्ते पहने हुए थे। एकान्त में चलते हुए

घुड़सवारों का एक दल आगामी गौड़-विग्रह की चर्चा कर रहा था। कहीं पङ्किल स्थानों को भरने का आदेश पाकर सभी लोग तृण के पूले काट रहे थे। कहीं वृक्ष के शिखर पर चिल्लाते हुए झगड़ालू ब्राह्मण नीचे खड़े सिपाहियों के बेतों से डराये जा रहे थे। कहीं अन्न के कवलों से आकृष्ट ग्रामीण कुत्ते जञ्जीरों में बाँधे जा रहे थे। कहीं आपस की जीत की होड़ से उद्धत राज-पुत्र घुड़-दौड़ कर रहे थे।

अनेक वृत्तान्तों से सैन्य कुतूहल-जनक था, प्रलय-सागर के समान संसाररूप ग्रास ग्रहण करने के लिए जा रहा था, पाताल के समान महा-भोगियों की रक्षा के लिए उत्पन्न हुआ था, कैलास के समान परमेश्वर के रहने के लिए सृष्ट हुआ था। प्रजापतियों के चारों युग सृजन करने के कोश के समान उसमें सभी प्राणियों के प्रकार दिखाई पड़ते थे। क्लेश-पूर्ण होने पर भी तप के समान वह कल्याण-कारी था।

ऐसा दृश्य देखता हुआ हर्ष शिविर पर पहुँचा। अपने आवास में जाकर उसने समीप में बैठे हुए माननीय बाहुशाली राजकुमारों के ये उद्योग द्योतक वार्तालाप सुने—"मांधाता ने दिग्विजय का रास्ता बताया। रघु ने, जिसके रथ का वेग रुका नहीं अल्पकाल में ही जगत् को शान्त किया। धनुष की सहायता से पाण्डु ने क्रमागत बल, कुलीनता और धन के मद से उद्धत राजाओं को करद बनाया। चीन देश को पार करके अर्जुन ने राजसूययज्ञ सम्पादन करने के लिए हेमकूट पर्वत

123452

को, जिसके कुञ्ज क्रुद्ध गन्धर्वों के धनुषों की नोकों के टङ्कार से गूँज रहे थे, पराजित किया। पराक्रमी व्यक्तियों की विजय में केवल सङ्कल्प की देर होती है। हिमावृत हिमालय की आड़ में रहने पर भी दुर्बल (किन्नरराज) द्रुम ने युद्ध के भय से किङ्कर की भाँति कौरवेश्वर का कर वहन किया। पहले के राजा अतिविजय की इच्छा नहीं रखते थे; इसी लिए प्राग्ज्योतिषाधिपति भगदत्त, दन्तवक्र, क्राथ, कर्ण, कौरव, चेदिराज शिशुपाल, म्लेच्छ-पति शाल्व, जरासन्ध, सिन्धुराज जयद्रथ प्रभृति अल्प भू-भाग के ही नृपति हुए। राजा युधिष्ठिर, जिसने अर्जुन की विजय द्वारा संसार को कँपा दिया था, सन्तोषी था; क्योंकि समीप में ही स्थित किन्नर-राज्य को उसने सह लिया। चण्डकोष आलसी था, जिसने पृथ्वी को भी जीतकर स्त्री-राज्य में प्रवेश नहीं किया। हिमालय और गन्धमादन का अन्तर अत्यल्प है, उत्साही व्यक्ति के लिए तुर्क देश हाथ भर है, फारस देश बित्ता भर और शक-स्थान खरगोश का एक पग। प्रतिरोध करने में असमर्थ पारियात्र देश की युद्ध-यात्रा आसान है। शौर्यरूप शुल्क से दक्षिणापथ सुलभ है। दक्षिण-समुद्र की तरङ्गों से आनेवाली हवा से हिलती चन्दन-शाखाओं के सौरभ से जिसकी गुहाएँ रमणीय हैं उस दर्दुर पर्वत के निकट ही मलयाचल है और मलयाचल से लगा हुआ ही महेन्द्र पर्वत है।' घरके द्वार पर दोनों ओर खड़े सामन्तों को हर्ष ने अपनी भ्रूलता से सम्मानपूर्वक विसर्जित किया। तब भीतर जाकर वह नीचे उतरा और बाहरी सभा-मण्डप में रखे

आसन पर चढ़ा। लोगों को हटाकर वह कुछ देर तक वहाँ बैठा रहा।

कुछ ही देर में धरती पर अपने दोनों हाथ रखकर प्रतिहार ने निवेदन किया "देव, आसाम के राजकुमार ने हंसवेग नामक अपना अन्तरङ्ग दूत भेजा है। वह तोरण पर खड़ा है।" राजा ने सादर आदेश दिया—"उसे शीघ्र प्रवेश कराओ" राजा के आदर के कारण वह चतुर प्रतिहार स्वयं ही बाहर गया। अनन्तर प्रचुर उपहार ढोनेवाले पुरुषों के बड़े झुण्ड से अनुसृत होते हुए हंसवेग ने सविनय राज-मन्दिर में प्रवेश किया। सुन्दर पूर्णता के कारण आँखों को आनन्द देनेवाली आकृति से वह अपनी गुण-गरिमा को मात कर रहा था। दूर से ही पाँच अङ्गों (हाथ, पाँव, मस्तक) से आँगन का आलिङ्गन करते हुए उसने प्रणाम किया। 'आओ, आओ' इस तरह सम्मान-पूर्वक पुकारे जाने पर वह दौड़कर निकट गया और पाद-पीठ पर अपने ललाट को रगड़ा। राजा द्वारा उस की पीठ पर हाथ रखे जाने पर उसने फिर समीप जाकर प्रणाम किया। नरेन्द्र की स्निग्ध दृष्टि द्वारा बताये गये पास के स्थान पर वह बैठ गया। अपने शरीर को कुछ तिरछा करते हुए राजा ने बीच में खड़ी चामर-ग्राहिणी को हटा दिया और आमने-सामने होकर प्रीति-पूर्वक पूछा—"हंसवेग, श्रीमान् कुमार सकुशल तो हैं?" उसने उत्तर दिया—"आज वे सकुशल हैं, जब कि देव स्नेह से नहलाई और मित्रता के रस से आर्द्र वाणी से इस तरह सम्मान-पूर्वक पूछ रहे हैं।"

कुछ देर ठहरकर उसने चतुराई से फिर कहा—"चारों समुद्रों के भोग-ऐश्वर्य के पात्र-स्वरूप देव के लिए सद्भाव-पूर्ण एक हृदय को छोड़कर दूसरा अनुरूप उपहार संसार में दुर्लभ है। तथापि संदेश को अशून्य करते हुए हमारे स्वामी ने पूर्वजोपार्जित आभोग नामक इस वारुण[१] आतपत्र का उचित स्थान में रखकर इसे कृतार्थ किया है। इसके सम्बन्ध में बहुतेरे कुतूहल-जनक आश्चर्य देखने में आते हैं। चन्द्रमा की किरण सूर्य से निकल कर छाया की शीतलता के लिए प्रतिदिन इसमें एक एक कर के प्रवेश करती है। इसमें प्रवेश करने पर ध्यान करने के बाद चन्द्रोज्ज्वल मधुर जल-धाराएँ, जो दन्त-वीणा[२] की शिक्षा के आचार्य हैं, छत्र की मणिमय शलाकाओं से जब तक इच्छा हो, गिरती रहती हैं। वरुण के समान जो चारों समुद्रों का अधिपति हुआ है या होनेवाला है उसे ही यह अपनी छाया से अनुगृहीत करता है, दूसरे को नहीं। इसे न आग जलाती है, न हवा उड़ाती है, न जल भिगोता है, न धूल मलिन करती है, न जरा जर्जरित करती है। अब देव इसे अपनी दृष्टि से अनुगृहीत करें, फिर एकान्त में सन्देश भी सुनेंगे।" इतना कह मुँह घुमा, उसने अपने आदमी से कहा—"उठा देव को दिखाओ।"

१—वरुण से प्राप्त।

२—सर्दी के कारण एक दूसरे की चोट से खटखटाती दन्त-पंक्ति रूपी वीणा।

इतना कहते ही उस आदमी ने उठकर उसे ऊपर उठाया और धुले रेशमी वस्त्र के आवरण से खींच लिया। उस अत्यन्त सफेद छाते के खींचे जाते ही जान पड़ा जैसे शिव ने अट्टहास किया, जैसे शेषनाग का फण-मण्डल पाताल से चमकते हुए निकल आया, जैसे क्षीर-सागर अन्तरिक्ष में गोल होकर स्थिर हो गया, जैसे आकाशरूपी आँगन में शरद् ऋतु के बादलों की सभा बैठी, जैसे पितामह के विमान के हंसों ने पंख फैलाकर गगन में विश्राम किया, जैसे लोगों ने अत्रि के नेत्र से निकले चन्द्रमा का जन्म-दिवस देखा, जो परिधि की धवलता के कारण मनोहर था, जैसे नारायण-नाभि के कमल का उत्पत्ति-समय प्रत्यक्ष हुआ, जैसे आँखों को चाँदनी रात देखने की-सी तृप्ति हुई, जैसे अम्बर के उदर में मन्दाकिनी का महान् पुलिन-मण्डल उग आया, जैसे दिवस पूर्णिमा की रात में परिणत हो गया। समीपवर्ती पोखरों के चक्रवाक-मिथुन चन्द्रोदय के सन्देह से दुःखी होकर खुलते चोंचों से मृणाल के टुकड़े गिरा गिराकर धीरे धीरे एक दूसरे से अलग हो गये। शरद् ऋतु के बादलों की आशङ्का से वाणी बन्द करके घरेलू मोर मूक और पराङ्मुख हो गये। चन्द्र दर्शन से आनन्दित होते हुए कुमुद गण खिलते हुए दल-पुटों के अट्टहास के साथ जग उठे।

राजवृन्द-सहित विस्मित होते हुए राजा ने बेंट के अनुसार ऊपर उठती दृष्टि से तीन लोकों में अद्भुत उस महान् छत्र को सादर देखा। वह त्रिभुवन का तिलक-जैसा, श्वेत द्वीप का शैशव-

जैसा, शरच्चन्द्र का आंशिक अवतार-जैसा, धर्म का हृदय-जैसा और चन्द्रलोक का मन्दिर-जैसा था। वह साम्राज्य का मुख-जैसा था जो दाँतों से धवल हो, स्वर्ग का सीमन्त-जैसा जो मोतियों के वेष्टन से सफेद हो, चन्द्रमण्डल-जैसा जिसका अभ्यन्तर अत्यधिक ज्योत्सना से शुक्ल हो, ऐरावत का निश्चल हुआ गोल कान-जैसा जिसके शङ्ख की श्री शुक्लता से हँस रही हो, विष्णु का त्रिभुवन-वन्दनीय चरण-जैसा जो गंगा के भँवर के समान श्वेत हो। छाते की चारों ओर मानसरोवर के मृणाल के सूतों के बने छोटे छोटे चँवर सटे हुए थे, जो वरुण के शिरोरत्न के किरण-सदृश थे। छत्र के शिखर पर पंख फैलाये हुए हंस का आकार था, जो मानो चक्रवर्ती की लक्ष्मी के नूपुरों की ध्वनि सुनने की अभिलाषा से निश्चल था। प्रभाव से दृढ़ हुए कोमल मन्दाकिनी-मृणाल से उसका बेंट बना था, जो मुकुलित-फण वासुकि के समान चमकीला था। वह अपनी धवलिमा से नक्षत्र-पथ को मानो धो रहा था, अपनी प्रभा के प्रवाह-विस्तार से दिवस को मानो आच्छादित कर रहा था, ऊँचाई में स्वर्ग को मानो नीचा कर रहा था। वह सभी मङ्गलों के ऊपर में मानो स्थित था। वह श्री का श्वेत मण्डप-सा, ब्रह्म-स्तम्भ के ऊपर पुष्प-गुच्छ-सा, ज्योत्स्ना का नाभि-मण्डल-सा, कीर्ति का विशद हास-सा, असि-धारा-जल का फेन-पुञ्ज-सा और शूरता का यशःपटल-सा था।

जब राजा ने पहले इसे देख लिया, तब नौकरों ने शेष उपहार भी क्रम से दिखाये। यथा—भगदत्त आदि राजाओं से आगत

प्रसिद्ध अलङ्कार, जो अपने उत्तम रत्नों की किरणों से दिशाओं को लाल कर रहे थे; प्रभावर्षी उत्कृष्ट शिरोरत्न; हार, जो क्षीर-सागर की धवलता के कारण-स्वरूप थे; शरच्चन्द्र-किरण-सदृश स्वच्छ रेशम, जो अनेक रङ्गों से रंगे बेंत के पिटारों में कुण्डलाकार रखे हुए थे; कुशल शिल्पियों द्वारा उत्कीर्ण पान-पात्रों के संग्रह, जो शुक्ति, शंख, और गल्वर्क आदि रत्नों के बने थे; ढेर के ढेर कार्दरङ्ग-चमड़े के ढाल, जिनके किनारे मनोहर थे, जिन पर सोने से सुन्दर पत्र-भङ्ग बने थे, और जिनकी कान्ति आवरणों से रक्षित थी; भुर्ज-वृक्ष की त्वचा के समान कोमल कोपीन; समूरुक मृग के आकार के उपधान तथा अन्य वस्तुएँ, जो रङ्ग-बिरङ्गे कोमल वस्त्रों की बनी थीं; बेंत के बने आसन, जिनके आच्छादन प्रियङ्गु फल के समान पीले थे; सुभाषितों की पुस्तकें, जिनके पत्र अगुरु-वल्कल के बने थे; पल्लव से लटकते सरस पूगफल, जिनसे दूध निकल रहा था, जो तरुण हारीत पक्षी के समान हरे थे और जो पके पीले पटोल के रङ्ग के थे; सहकार-लता के रस तथा कृष्ण-अगुरु के तेल से भरे बाँस के मोटे चोंगे, जो कुपित कपि के कपोल के समान भूरे कपोतिका-पत्तों के पुटों में लपेटे हुए थे; ढेर के ढेर अञ्जन-चूर्ण-सदृश कृष्णअगुरु, भारी ताप दूर करनेवाला गोशीर्ष चन्दन, हिम-शिला-खण्डों के समान शीतल, स्वच्छ और श्वेत कपूर, कस्तूरी के कोश, पके फलों से युक्त कक्कोल-पल्लव, लवङ्ग फूल की मञ्जरियाँ तथा जाती-फलों के गुच्छे जो, रेशमी कपड़ों के

बोरों में रखे थे; उल्लक[1] की कलशियाँ, जिनसे अत्यन्त मधुर द्राक्षा की सुगन्ध निकल रही थी; उजले काले चामरों के संग्रह; आलेख्य-फलकों[2] के चित्रित सम्पुट (बकस), जिनपर तूलिकाएँ और (रङ्ग रखने की) तुम्बियाँ लटक रही थीं; किन्नरों, वन-मानुषों, जीवंजीवक पक्षियों, और जल-मानुषों के कुतूहल-जनक जोड़े, जिनके कन्धे सुवर्ण शृङ्खलाओं से बँधे थे; कस्तूरिका-कुरङ्ग, जो अपने परिमल से दिशाओं को सुरभित कर रहे थे; घरों में विचरने के अभ्यस्त चमरी मृग; सोने के पानी से चित्रित बेंत के पिंजड़ों के भीतर रखे हुए शुक-शारिका प्रभृति पक्षी, जो बार बार अनेक सूक्तियाँ जप रहे थे; प्रवाल के बने पिंजड़ों के अन्तर्गत चकोर; जलचारी हाथियों के दाँतों के बने कुण्डल, जो उनके उन्नत मस्तकों से निकले मोतियों की माला से उज्ज्वल थे।

छत्र देखकर राजा प्रसन्न-चित्त हुआ। उसने इसे अपनी प्रथम युद्ध-यात्रा में शुभ समझा और हंसवेग से प्रीति-पूर्वक कहा —"भद्र, सकल रत्नों के निवास-स्थान कुमार से परमेश्वर[3] के शिरोधार्य इस महान् आतपत्र की प्राप्ति, सागर से चन्द्रमा की प्राप्ति के समान, विस्मय-जनक नहीं है। बड़ों द्वारा उपकार किया जाना बाल-विद्या है (जो कभी विस्मृत नहीं हो सकती)। उस

१—एक तरह के सुगन्धित फल का रस, या एक तरह का आसव।

२—चित्र बनाने की तख्तियाँ।

३—राजा; शिव।

स्थान से उपहारों का ढेर हटाये जाने पर क्षण भर ठहरकर राजा ने "हंसवेग, विश्राम करो" यह कहते हुए उसे प्रतिहार के घर भेज दिया। अपने भी उठकर उसने स्नान किया और मङ्गल की आकांक्षा करते हुए पूर्व की ओर मुँह करके आभोग की छाया में प्रवेश किया।

उसके प्रवेश करते ही छाया से इतनी शीतलता उत्पन्न हुई कि चन्द्र-किरण मानो उसकी चूड़ामणि हो गई, जल-कण-स्राविणी चन्द्रकान्त-मणियों ने उसके ललाट-तट को मानो चूमा, आँखों में कपूर का चूर्ण मानो गल गया, पिघलते हिम-कणों से बने नीहार मानो हार हुए, छाती पर हरिचन्दन रस की धारा मानो निरन्तर गिरी, हृदय इतना शिशिर हो गया जैसे कुमुदों का बना हो, किसी अदृश्य पिघलती हिम-शिला से उसके अवयव मानो लिप्त हुए। विस्मित होकर उसने सोचा—"एक-मात्र अक्षय मित्रता को छोड़कर दूसरा प्रत्युपहार है ही क्या?" भोजन के समय उसने धवल कपड़े से ढके स्वच्छ नारियल में रखा हुआ लेप-शेष चन्दन, अपने अङ्ग के छुए दो वस्त्र, परिवेश नामक कटि-सूत्र जो शरद् ऋतु की ताराओं के आकार के उज्वल मोतियों से गुँथा हुआ था, तरङ्गक नामक कुण्डल जिसके बहुमूल्य पद्मराग से दिवस लाल हो रहा था, तथा प्रचुर भोजन, हंसवेग के पास भेजा। इसी तरह वह दिन बीता।

तब सेना की धूल से धूसरित सूर्य मानो अपना मलिन अङ्ग धोने के लिए पश्चिम सागर में उतरा। वरुण को मानो

आभोग-दान की बात बताने के लिए वह वारुणी दिशा में गया। द्वीपों सहित पृथ्वी ने कमलों को बन्द करते हुए आरम्भ में ही राजा की सेवा में मानो अपने हाथ जोड़े। सभी लोगों के अञ्जलि-बन्ध के बन्धु संध्या-राग ने नृप-अनुराग की तरह संसार को ढक लिया। पूर्व दिशा मानो गौड़ाधिपति के अपराध के-भय से श्याम हो गई। तमोवृत पृथिवी मानो अन्य नृपों के प्रतापानल बुझने से काली हो गई। दिशाओं ने विकसित तगरों के सदृश रुचिर अविरल नक्षत्र बिखेरे, जो राजा के संध्याकालीन सभा-मण्डप के फूलों के समान लगते थे। सेना के गन्ध-गजों के मद के सौरभ के प्रति मानो दौड़े हुए ऐरावत का आकाश-मार्ग धूलि-धवल शोभित हुआ। कुपित नृप-व्याघ्र के सूँघने से मानो उपद्रव-युक्त हुई प्राची को छोड़कर चन्द्रमा नभस्थल पर चढ़ा। प्रयाण-वार्ता के समान मानिनी स्त्रियों के हृदय द्रवीभूत करनेवाली चन्द्र-किरणें दशों दिशाओं में फैल गईं। वाहिनी पति,[1] जिनके प्राणियों के व्यापार चञ्चल हो गये,[2] इस तरह क्षुब्ध हो उठे जैसे नवनृपति की युद्ध-यात्रा से भयभीत हो गये हों। सभी दिशाओं को छोड़कर अन्धकार-राशि गुहाओं में घुस गई, जैसे चिन्ता राजाओं के हृदयों में। कुमुद-वनों की, जैसे प्रतिपक्षी सामन्तों की आँखों की, नींद टूट गई।

१—समुद्र, सेनापति।

२—जिनका धैर्य विचलित हो गया (सेनापति के पक्ष में)।

इस समय तने चँदोवे के नीचे बैठे हुए राजा ने 'तावत् जाओ' कहकर परिजनों को विसर्जित किया और हंसवेग को आदेश दिया—'संदेश कहो'। प्रणाम करने के बाद उसने कहना शुरू किया—'देव, पुराने जमाने में बराह के सम्पर्क से गर्भवती हुई भगवती पृथ्वी ने रसातल में नरक नामक पुत्र को जन्म दिया। बाल्यकाल में ही उस वीर के पाँवों पर श्रेष्ठ नृपतिगण प्रणाम करने लगे। घर के पास पोखरे की चक्रवाकियों द्वारा क्रोध-पूर्वक कुटिल कटाक्ष से देखे जाने पर भी (अर्थात् अस्त का समय होने पर भी) सूर्य उस त्रिभुवन-पति बाहुशाली की आज्ञा बिना अस्त नहीं होता था, और डर के मारे (सूर्य का सारथि) अरुण अपने रथ को घुमा लेता था। उसी ने वरुण के इस बाह्य हृदय आतपत्र को हर लिया। उस महात्मा के वंश में भगदत्त, पुष्पदत्त, वज्रदत्त आदि सुमेरु-सदृश अनेकों बड़े बड़े राजाओं के बीतने पर महाराजाधिराज तेजस्वी स्थिरवर्मा का जन्म हुआ, जो महाराज भूतिवर्मा का प्रपौत्र, चन्द्रमुखवर्मा का पौत्र तथा कैलास के समान स्थिर-स्थिति देव स्थितिवर्मा का पुत्र था। लोग उस (सुस्थिरवर्मा) को मृगाङ्क कहते थे। वह अहङ्कार के साथ मानो यमज उत्पन्न हुआ था। बाल्यावस्था में ही उसने द्विजातियों से प्रीतिपूर्वक तथा शत्रुओं से अप्रीतिपूर्वक समग्र प्रतिग्रह[1] ग्रहण करवाया। इस (राजा) में लवणालय से उत्पन्न लक्ष्मी का अति दुर्लभ

१—दान; सेना के पीछे का भाग।

परम माधुर्य था। उसने वाहिनीनाथों के शङ्ख हरण किये, रत्न नहीं; पृथ्वी से स्थैर्य ग्रहण किया, कर नहीं; भूभृतों का गौरव लिया, नैष्ठुर्य नहीं। उस प्रातःस्मरणीय राजा को रानी श्यामा देवी से सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र भास्करवर्मा अपरनाम कुमार हुआ, जैसे शन्तनु को भागीरथी से भीष्म हुआ था। शैशव से ही इनका यह अति दृढ़ सङ्कल्प है—'शिव के चरण-कमलों को छोड़कर मैं दूसरे को प्रणाम नहीं करूँगा।'' त्रिभुवन-दुर्लभ यह ऐसा मनोरथ इन तीनों में से किसी एक से सम्पन्न हो सकता है—सारे संसार के विजय से या मृत्यु से या प्रचण्ड प्रतापानल से दिशाओं को जलानेवाले, जगत् के एकमात्र वीर, देव-सरीखे मित्र से। राजाओं की मित्रता प्रायः कार्य की अपेक्षा करती है। वह कौन-सा कार्य है जिसके द्वारा देव को मित्र बनाया जा सके? यश-सञ्चय की इच्छा करनेवाले देव के लिए धन तो बाहरी चीज है। केवल अपनी बाहु पर ही निर्भर करनेवाले को शेष अवयवों की भी सहायता करने की अभिलाषा व्यर्थ है, फिर बाहरी लोगों (की सहायता) का कहना ही क्या। चारों सागर लेने के लोभी को एक भू-भाग के दान से क्या सन्तोष हो सकता है? लक्ष्मी का मुख-कमल देखनेवाले के लिए सुन्दर-कन्यादान का प्रलोभन तुच्छ है। सभी असंभव उपायों से ही यह पदार्थ प्राप्त हो सकता है; अतः अनुरोध है कि देव केवल हमारी प्रार्थना ही सुनें। प्राग्ज्योतिषेश्वर देव के साथ वैसी ही अक्षय मैत्री चाहते हैं, जैसी शिव के साथ कुबेर की, इन्द्र के

साथ दशरथ की, कृष्ण के साथ अर्जुन की, दुर्योधन के साथ कर्ण की तथा वसन्त के साथ मलयानिल की है। यदि देव का भी हृदय मैत्री चाहता है और समझता है कि मित्र नाम के आवरण में दासता का आचरण करते हैं, तब विलम्ब क्यों ? आज्ञा दें कि प्राग्ज्योतिषेश्वर[१] देव के, जैसे मन्दराचल विष्णु के, गाढ़ आलिङ्गन का अनुभव करें, जिसमें केयूर के आगे की बड़ी मणि के सङ्घर्ष से कङ्कण[२] के रत्न-खण्ड बज उठते हैं। प्राग्ज्योतिषेश्वर की लक्ष्मी इस मुख-चन्द्र में, जिससे विमल लावण्य तथा सौभाग्य की सुधा अनवरत झर रही है, अपनी आँखें देर तक तृप्त करें। यदि देव इस प्रार्थना का अभिनन्दन नहीं करते हैं, तो आज्ञा दें कि मैं स्वामी से क्या कहूँ ?' इतना कहकर वह चुप हो गया।

पहले से ही कुमार के सद्गुण मालूम होने के कारण राजा के हृदय में उसके प्रति सम्मान तो था ही। आभोगवाली बात से तो उसका प्रेम पराकाष्ठा पर पहुँच गया। लजाते हुए उसने सादर उत्तर दिया—"हंसवेग, वैसे महात्मा, महाकुलीन, पुण्य-राशि, गुणियों में श्रेष्ठ, परोक्ष-मित्र, स्नेही के प्रति मुझ सरीखे का मन स्वप्न में भी कैसे अन्यथा हो सकता है ? समस्त जगत् को तपाने में निपुण सूर्य की किरणें त्रिभुवन-नयन-आनन्दप्रद कमलों के प्रति शीतल हो जाती हैं। उनके अनेक गुणों से खरीदे गये हम मित्रता करनेवाले कौन हैं ? सज्जन के माधुर्य से दशों दिशाएँ

१—आसाम का राजा। २—पर्वत-नितम्ब (अन्य पक्ष में)।

बिना वेतन की दासी हो जाती हैं। एकान्त निर्मल तथा उन्मुख स्वभाव का सादृश्य पाये हुए कुमुद के लिए किसने चन्द्र से कहा? (अर्थात् स्वभाव-सादृश्य के कारण चन्द्र स्वयं ही कुमुद के प्रति आकृष्ट होता है)। कुमार का सङ्कल्प अत्यन्त प्रशंनीय है। वह स्वयं बाहुशाली हैं और मुझ मित्र के धनुष धारण करने पर वह शिव को छोड़कर और किसे प्रणाम करेंगे? इस सङ्कल्प से मेरी प्रीति बढ़ गई। यह हृदय अभिमानी पशु सिंह का भी सम्मान करता है, फिर मित्र का क्या कहना। इसलिए वैसा यत्न करो, जिससे कुमार को देखने की यह उत्कण्ठा हमें देर तक क्लेशित न करे"।

हंसवेग ने निवेदन किया—"अब और दूसरा क्या क्लेशित कर सकता है? देव का कहना ठीक है। सज्जन सेवा-भीरु होते हैं, उसमें भी विशेषत: यह अहंकार-धन वैष्णव वंश। अभी हमारे स्वामी का वंश रहे। देव देखें—सेवा (नौकरी) के प्रति पुरुष को अति वृद्ध कुमाता के सदृश दुर्गति अभिमुख करती है, असंतुष्ट घरनी के सदृश तृष्णा प्रेरित करती है, बुरे अपत्यों के समान यौवन-काल में उत्पन्न हुए अभिलाषाओं से भरे कुविचार आकुल करते हैं। वह वयस्क कुमारी के समान परयाचना-योग्य अवस्था की अपेक्षा करता है। घर के दुर्बन्धुओं के समान दु:स्थित सभी ग्रह उसे कोशिश करने के लिए बाध्य करते हैं। पुरातन दुस्त्यज भृत्यों के समान पूर्व के पाप उसका पीछा करते हैं। वह पापी कंडे की आग के समान समस्त शरीर को तपानेवाले राज-कुल में

प्रवेश करने का निश्चय करता है। जिसकी सभी इन्द्रियों की शक्ति नष्ट हो गई हो उस व्यक्ति के समान उसकी मनोगत विषयोपभोग की इच्छा व्यर्थ है। पहले ही तोरण के नीचे वन्दन-माला के किसलय के समान सूखता हुआ वह द्वार-पालों द्वारा रोक दिया जाता है। द्वार पर प्रवेश करते ही वह बेचारा हरिण की तरह दूसरों द्वारा पीटा जाता है, हाथियों की युद्ध-शिक्षा के चर्म पुट[1] की तरह प्रतीहारों के करों के प्रहार से बार बार निकाल दिया जाता है, (धरती में गड़ी) निधि पर के वृक्ष की शाखा की तरह धन की अभिलाषा से मुँह नीचे किये रहता है। याचक नहीं होने पर भी वह नीचों द्वारा घुमवाकर विदा कर दिया जाता है और वह उद्विग्न हो जाता है[2]। कंटक नहीं होने पर भी पाँव में लगने से वह जल्द खींचकर फेंक दिया जाता है। कामदेव नहीं होने पर भी असमय में पास आने से वह कुपित ईश्वर की दृष्टि से जलकर प्रलीन हो जाता है। क्रोध से तिरस्कृत होने पर भी बन्दर की तरह उसके मुख का रंग नहीं बदलता है। ब्राह्मण की हत्या करनेवाले के समान प्रतिदिन प्रणाम करने से उसका कपाल घिस जाता है और वह अछूत होकर अशुभ कर्म करता है[3]। त्रिशंकु के समान उभय लोक से भ्रष्ट होकर

१—चमड़े की बनी हाथी की आकृति।

२—या, तीर नहीं होने पर भी वह दूर तक खींचकर फेंका जाता है और वह वेग-पूर्वक जाता है।

३—या विषयोपभोग से वञ्चित होकर नीच कर्म करता है।

वह दिन-रात नतमस्तक रहता है। घोड़े की तरह कवल के लोभ से वह अपने को सुख-बाह्य[1] बनाता है। निराहार पड़े रहनेवाले के समान हृदय में जीने की आशा रखकर वह शरीर को क्षीण करता है। कुत्ते की तरह अपनी स्त्री से विमुख होकर जघन्य कर्म में लगा हुआ वह अपने को खपा देता है। प्रेत की तरह उसे अनुचित भूमि पर अन्न का पिण्ड दिया जाता है। कौए की तरह जीभ की चपलता के कारण पुरुष-तेज खोकर वह व्यर्थ ही जीता है। जैसे पिशाच राख से रूखे हुए श्मशान-वृक्षों के पास जाता है, वैसे ही वह सम्पत्ति के कारण कठोर हुए राज-वल्लभों के पास। असत्य वचन से मधुरता उत्पन्न कर केवल होठों से अनुराग प्रकट करनेवाले राज-शुकों[3] के आलाप से वह शिशु के समान मोहा और लुभाया जाता है। वेताल की तरह नरेन्द्र के प्रभाव में आकर वह ऐसा कुछ नहीं है जो नहीं करे। चित्र-लिखित धनुष की तरह असत्य गुण चढ़ाने के[4] एक मात्र काम में सदा नत रहकर वह निर्वाण-तेज (निस्तेज) हो जाता है। झाड़ू से बटोरे गये धूल के ढेर की

१—आसानी से हाँके जाने लायक, सुख से बाहर अर्थात् दुःखी।

२—पुरुष की विष्ठा खाकर (कौए के पक्ष में)।

३—सुग्गे के समान राजा, एक तरह का सुग्गा।

४—असत्य गुण गाना, झूठी प्रशंसा करना; अवास्तविक प्रत्यञ्चा चढ़ाना।

तरह वह निर्माल्य वहन करता है[१]। कफ से पीड़ित व्यक्ति की तरह वह प्रतिदिन कटुकों[२] से उद्विग्न होता है। बौद्ध की तरह अर्थ-शून्य-विज्ञप्ति[३] से वैराग्य प्राप्त कर काषाय वस्त्र की अभिलाषा करता है। मातृ-देवियों के बलि-पिण्ड की तरह वह रात में भी जहाँ तहाँ फेंक दिया जाता है। अशौच-गत व्यक्ति की तरह कु-शयन (पर सोने) से उसे अत्यधिक असुख होता है। तुला-यंत्र की तरह गौरव को पीछे रखकर वह जल के लिए भी झुकता है। वह इतना दीन हो जाता है कि केवल शिर झुकाने से संतुष्ट न होकर वचनों से भी पाद-स्पर्श अर्थात् स्तुति करता है। निर्दय वेत्र-धारियों के वेत्र-प्रहारों से मानो डरकर लज्जा उसे छोड़ देती है। दीनता के कारण उसका हृदय इतना संकुचित हो जाता है कि आत्म-सम्मान की भावना से वह वर्जित हो जाता है। कुत्सित कर्म अङ्गीकार करने से उन्नति मानो कुपित होकर उससे अलग हो जाती है। धन की आशा से वह क्लेश उपार्जन करता है। अपनी उन्नति की आशा से वह अपनी अवहेलना बढ़ाता है। विविध कुसुमों के सौरभ से सुगन्धित वन के रहने पर भी

१—देवोच्छिष्ट द्रव्य या उपयोग के बाद फेंके गये फूल धारण करता है; माला नहीं पहनता है।

२—कटु ओषधि; कटु वचन।

३—बौद्ध धर्म के 'शून्य-वाद' का ज्ञान; निष्फल प्रार्थना।

वह मूर्ख तृष्णा से हाथ जोड़ता है[१]। कुलीन होने पर भी अपराधी की तरह डरते डरते वह (स्वामी के) समीप आता है। दर्शनीय होने पर भी चित्रित फूल की तरह उसका जन्म निष्फल है। विद्वान् होने पर भी मूर्ख की तरह उसके मुख से वाणी निकलती ही नहीं है या निकलती भी है तो अशुद्ध ही। शक्तिमान् होने पर भी कुष्ठ रोगी की तरह वह हाथ सङ्कोचित किये रहता है। समकक्ष (भृत्यों) की उन्नति होने पर वह विना आग के पकता है। अपने से नीच (भृत्यों) के समकक्ष बनाये जाने पर वह विना उच्छ्वास के मरता है। अपमानों से वह तृणवत् हो जाता है। वह दुःखी, शोकाग्नि से जलता रहता है। भक्त होने पर भी उसे भक्त[२] नहीं मिलता है। ताप-रहित[३] होने पर भी वह अपने बन्धुओं को संतापित करता है। विमान होने पर भी उसे गति नहीं होती है[४]। गौरव-हीन[५] होने पर भी वह नीचे जाता है। निःसत्त्व (=निर्जीव) होने पर भी वह महामांस बेचता है[६]।

१—वन का अर्थ जल भी है और तृष्णा से मृग-तृष्णा का भी बोध होता है।

२—अनुरक्त; भात।

३—गर्व-रहित।

४—विरोध-परिहार में—वह मान-रहित है और निरुपाय है।

५—हलका; महत्त्व-हीन (विरोध-परिहार में)।

६—विरोध-परिहार में—वह सत्त्वगुण-विहीन होता है और अपना मांस अर्थात् अपना शरीर बेचता है।

निर्मद[1] होने पर भी वह अस्वतन्त्र है। योगी नहीं होकर भी वह ध्यान से अपने को वश में रखता है[2]। बिछावन पर से उठते ही वह दग्धमुण्ड[3] (अपने स्वामी को) प्रणाम करता है। रात-दिन नाचता हुआ वह पारिवारिक विदूषक मनस्वि-जन को हँसाता है। वह कुलाङ्गार वंश को जलाता है। तृण पाने पर भी वह नर-पशु अपना कंधा झुकाता है। उस मांस-पिण्ड का जन्म केवल पेट भरने के लिए होता है। वह माता के गर्भ का रोग है; (पूर्व जन्म में) पापाचार करने से वह भृत्य होता है। उसके लिए कौन-सा प्रायश्चित्त है? प्रतिपत्ति (=प्रतिष्ठा) के लिए वह क्या करे? कहाँ जाने से उसे शान्ति होगी? कैसा उसका जीवन है? उसका पुरुषाभिमान क्या है? उसके लिए विलास किसका नाम है? उपभोग करने की उसकी आशा कैसी? दारुण 'दास' शब्द प्रबल पङ्क के समान सब को नीचे ले जाता है। उस जीवन को धिक्कार है। उस धन का निधन हो। उस सम्पत्ति का नाश हो। उन सुखों को प्रणाम है। उस ऐश्वर्य को हाथ जोड़ता हूँ। वह श्री दूर में ही रहे। वह परिच्छद[4]

१—मद्य-पान-रहित, अहङ्कार-रहित; (विरोध-परिहार में)।

२—वह निर्धन है और (धन के) ध्यान से अपने को वश में रखता है।

३—गर्मी से जिसका शिर जल गया हो, एक प्रकार का संन्यासी।

४—वस्त्र भूषण आदि उपकरण, आडम्बर।

उसका भला करे, जिसके लिए मस्तक धरती का स्पर्श करता है। वह क्लीव मुख से प्रिय वचन कहने में रत रहता है। वह कृमि सड़े मांस से बना है। वह [illegible] तुच्छ नर है[1]। वह [illegible] पाद-पीठ है, जिसका मस्तक (ऊपरी भाग) पाँव की धूल से धूसर रहता है। मधुर वचन कहने में वह कोकिल है। आनन्द-प्रद वाणी बोलने में वह मोर है। छाती घसने में वह स्थल-कूर्म है। ओछी खुशामद करने में वह कुत्ता है। मोहने में वह बाँसुरी है। अङ्ग-भङ्ग करने में वह वेश्या का शरीर है। पौरुषरूप धान के खेत में वह पुआल है। शिर की चञ्चलता में वह गिरगिट है। अपने को सिकोड़ने में वह कछुवा है। पाँव दबाने में वह उस्ताद है। थपकी सहने में वह गेंद है। कोण से ठोकर खाने में वह वीणा-दण्ड है। यदि दीन सेवक भी मनुष्यों में गिना जाय, तो राजिल[2] सर्प है और पुलाक[3] भी धान है। आत्म-सम्मानित व्यक्ति द्वारा क्षण भर के लिए भी किया गया पौरुष श्रेष्ठ है; झुककर त्रैलोक्य-राज्य का भी उपभोग करना मनस्वी व्यक्ति को अभीष्ट नहीं है। अतः देव जब इस प्रकार हमारी प्रार्थना स्वीकार करते हैं, तो समझें कि प्राग्ज्योतिषेश्वर कुछ ही दिनों में आ गये।" इतना कह वह चुप हो गया और कुछ देर में प्रणाम कर बाहर चला गया।

१—वह नरक है, जहाँ मान की रक्षा नहीं होती है।

२—एक तरह का साँप जिसे विष नहीं होता है।

३—शस्य-हीन धान।

राजा की वह रात (कामरूपाधिपति) कुमार को देखने की उत्सुकता से कटी। आत्म-समर्पण करने से महापुरुष विना मूल-मंत्र के वश में हो जाते हैं। प्रभात होने पर प्रधान प्रतिदूत के अधीन प्रचुर प्रति-उपहार देकर हंसवेग को विदा किया। अपने भी तब से वह अनवरत यात्रा करता हुआ शत्रु के प्रति बढ़ता गया। एक दिन उसने लेख-हारक से सुना कि राज्यवर्धन के भुज-बल से उपार्जित मालव-राज का अशेष साधन (=सैन्य) लेकर भण्डि आ गया है और समीप में ही ठहरा हुआ है। यह सुनकर उसके भ्रातृ-शोक अभिनव हो उठा, हृदय कातर हो गया और उसके आगे मूर्छा का सा अन्धकार छा गया। सभी काम छोड़कर वह राजाओं के साथ अपने मन्दिर में, जहाँ प्रतीहार के मना करने से परिजन शान्त और निःशब्द थे, भण्डि के आने की मूहूर्त भर प्रतीक्षा करता रहा।

अनन्तर कतिपय कुल-पुत्रों से घिरा हुआ भण्डि एक घोड़े पर आता दिखाई पड़ा। वह मलिन वस्त्र पहने हुए था। उसकी छाती तीरों की दागों से भरी थी, मानो लोहे की काँटियाँ गाड़कर उसकी छाती का फटना बन्द कर दिया गया था। छाती को छूते हुए श्मश्रु से, मानो स्वामी के प्रति सत्कार से, वह शोक प्रकट कर रहा था। व्यायाम छोड़ने से शिथिल हुए भुज-दण्ड पर, जो मङ्गल-वलय दोलायमान था, वही एकमात्र आभूषण (उसके शरीर पर) बच रहा था। असावधानी से पान खाने के कारण उसका अधर हल्की लाली लिए हुए था, मानो शोकाग्नि से जलते हुए

हृदय का अङ्गार लम्बी साँसों के वेग से बाहर आ गया था। मानो स्वामी (राज्यवर्धन) से वियुक्त होकर जीवन धारण करने के अपराध की लाज से उसका मुख अश्रु-जल-पटल से, जैसे वस्त्र के अञ्चल से, ढका था। वह दुर्बल हुए अङ्गों से लाज के कारण मानो अपने ही शरीर में घुस रहा था। वह (राज्यवर्धन को नहीं बचा सकने के कारण) व्यर्थ हुए भुजाओं के तेज को लम्बी साँसों से मानो उगल रहा था। पातकी के समान, अपराधी के समान, द्रोही के समान, लुटे गये के समान, ठगे गये के समान, यूथ-पति के पतन से दुःखी तरुण हाथी के समान, सूर्यास्तकालीन श्री-हीन कमलाकर के समान, दुर्योधन के निधन से उदास अश्वत्थामा के समान, अपहृत-रत्न सागर के समान वह राज-द्वार पर आया। घोड़े से उतरकर अधोमुख हो उसने राज-मन्दिर में प्रवेश किया। दूर से ही क्रन्दन करता हुआ वह राजा के पाँव पर गिर पड़ा।

उसे देखकर राजा भी उठकर कई पग उसकी ओर बढ़ा, उसे उठाकर गले लगाकर गाढ़ आलिङ्गन किया, और करुण होकर बहुत देर तक रोया। शोक का वेग शिथिल होने पर वह लौटकर पूर्ववत् अपने आसन पर बैठा। जब भण्डि ने अपना मुख धोया, तब राजा ने भी अपना। कुछ देर होने पर उसने भाई की मृत्यु का वृत्तान्त पूछा। तब भण्डि ने सारी घटना कह सुनाई। फिर राजा ने उससे पूछा—"राज्यश्री का क्या हाल है?" उसने फिर से कहा—"देव, देव राज्यवर्धन के स्वर्गीय होने पर तथा गुप्त

नामक व्यक्ति-द्वारा कुशस्थल (=कान्यकुब्ज) लिये जाने पर बन्धन से निकलकर देवी राज्यश्री ने विन्ध्य-वन में प्रवेश किया, यह बात मैंने लोगों से सुनी। उसकी खोज में अनेक जन भेजे गये; किन्तु वे अभी तक नहीं लौटे हैं।" यह सुनकर राजा ने कहा—"अन्य अन्वेषकों से क्या? जहाँ वह है वहाँ अन्य सभी काम छोड़कर मैं स्वयं जाऊँगा। आप भी सेना लेकर गौड़ की ओर बढ़ें" इतना कहकर वह स्नान-भूमि पर गया। भण्डि ने अपना शोक-श्मश्रु कटाया और प्रतीहार के घर स्नान किया। अपने शरीर के व्यवहार का वसन, कुसुम, अङ्गराग, और अलङ्कार भेजकर राजा ने उसके ऊपर अनुग्रह प्रकट किया, उसके साथ भोजन किया और उसी के साथ वह दिन बिताया।

दूसरे दिन उषाकाल में ही भूपाल के समीप जाकर भण्डि ने निवेदन किया—"देव, श्रीराज्यवर्धन के भुज-बल से अर्जित मालव-राज का सपरिच्छद साधन देखें।" राजा ने उसे आज्ञा दी—"ऐसा ही करो।" तब वह दिखाने लगा। यथा—हजार हजार हाथी, निरंतर बहते मद के आमोद से मुखर मधुकर-वृन्द से जिनके कपोल मलिन थे; वे (हाथी) जङ्गम शिलाओं के समान लगते थे; वे गम्भीर गर्जन कर रहे थे, मानो पृथ्वी पर जलधर उतर आये हों; शरद् ऋतु के एकत्र हुए दिवसों के समान वे विकसित सप्तच्छद फूलों की सुगन्धि छोड़ रहे थे। हरिण की तरह वेगवान् घोड़े, जो सोने के सुन्दर चित्रों से युक्त चामरों से मनोहर लगते थे। अभिनव-प्रभा-वर्षी विशिष्ट अलङ्कार, जो अपनी किरणों से दिशाओं

में अनेक इन्द्रधनुष बना रहे थे। काम से मतवाली मालव-अङ्गनाओं के कुचों के परिमल से दुर्लेलित हुए विस्मय-जनक उज्ज्वल हार, जो अपनी ज्योत्सना के प्रवाह से दिगन्तों को प्लावित कर रहे थे। चन्द्रकिरण-सदृश शुचि अपने[1] यश के समान बाल-व्यजन। श्वेत आतपत्र, जिसका बेंट सोने का था और जो लक्ष्मी के निवास पुण्डरीक के समान था। वारविलासिनियाँ जो सामरिक पराक्रम देखने की रुचि से उतरी हुई अप्सराओं के समान थीं। सिंहासन शयन, आसंदी[2] आदि राजकीय उपकरण। मालव के सभी सामन्त, जिनके चरण-युगल लोहे की बेड़ियों से बँधे थे। अशेष कोष-कलश, जो अलङ्कारों की मालाओं (के भार) से पीड़ित थे तथा जो (द्रव्य-) संख्या सूचक लिखित पत्रों से युक्त थे। यह सब देखकर राजा ने यथाधिकारी अध्यक्षों को स्वीकार करने के लिए आदेश दिया।

दूसरे दिन घोड़े लेकर वह अपनी बहिन की खोज में विन्ध्य-वन की ओर चला और कुछ ही दिनों तक यात्रा कर वहाँ पहुँच गया। पहुँचकर दूर से ही उसने एक छोटा-सा जंगली गाँव देखा। उसके वन्य भागों में जंगली धान के खलियानों पर साठी के जलते हुए भूसे के ढेरों से धुआँ निकल रहा था, विशाल वट-वृक्षों के चारों ओर सूखी शाखाओं से गो-वाट[3] बने हुए थे,

१—हर्ष के।
२—पीठिका, चौकी, आराम-कुर्सी।
३—गौओं के रहने के स्थान।

नन्हें बछड़े मारे जाने के रोष से बनाये गये व्याघ्र-यन्त्र[1] विद्यमान थे, अनियन्त्रित वन-पाल अन्य ग्राम के (आये हुए) लकड़हारों के कुठार बलात् छीन रहे थे, वृक्षों के घने झुरमुटों में चामुण्डा के मण्डप बने हुए थे। जंगली जगह होने के कारण कृषक-गण परिवार का पालन-पोषण करने में आकुल थे, खेती प्रायः कुदालों से ही होती थी, खेतिहर बलवान् नहीं थे, वे उच्च स्वर से बोलते हुए धान के बहुत से खिल खेत तोड़ रहे थे। अत्यन्त गतागत नहीं होने से भूमि प्रहत[2] नहीं हुई थी, खेत छोटे-छोटे और दूर-दूर पर थे, वे काश से भरे थे, उनकी मिट्टी लोहे की तरह काली और कड़ी थी, स्थान स्थान पर रक्खे गये स्थाणुओं से मोटे पल्लव निकल आये थे, श्यामाक नामक घास के अंकुरों पर चलना कठिन हो गया था, अलम्बुस बहुत थे और कोकिलाक्ष की झाड़ियाँ तब तक नहीं काटी गई थीं, अतः खेत कठिनाई से जोते जा रहे थे। खेतों के पास मचान बने हुए थे, जिनसे हिंसक जन्तुओं का उपद्रव सूचित होता था।

दिशा दिशा में वन में प्रवेश करने के स्थान पर प्रत्येक मार्ग के वृक्षों के नीचे पन-साल बने हुए थे। वहाँ पथिकों के पद-क्षेप से उठी धूल से धूसर हुए पल्लव छाया में पड़े हुए थे। हाल में ही कुएँ खने गये थे, जो वन-सुलभ साल-कुसुमों के गुच्छों से

१—बाघ फँसाने के यंत्र।
२—पद-दलित।

शोभित थे तथा जिनके समीप ही नागस्फुट के पौधे लगाये गये थे। सघन बिनी हुई चटाइयों से कुटियाँ बनी हुई थीं। ढेर के ढेर मिट्टी के बर्तन रक्खे हुए थे, जो सत्तू से शबल लगते थे और कीटों की कुटिल पंक्तियों से घिरे थे। यात्रियों द्वारा खाये गये जामुन के बीजों से समीपवर्त्ती स्थान रंग-बिरंगे हो रहे थे। धूली-कदम्ब के फूलों के गुच्छों से, जिनका पराग झड़ गया था, पनसाल पुलकित थे। काठ के मचानों पर रक्खी कर्करियों से[१] प्यास हरन हो जाती थी। शीतल और सिकतिल कलशियों से, जिनकी पेंदियाँ गीली थीं, थकावट दूर होती थी। आर्द्र शैवल से श्यामल अलिञ्जर[१] में जल शीतल हो रहा था। जल-कुम्भों से निकाले गये पाटल शर्करा[२] के टुकड़ों से दिशाएँ शिशिर हो गई थीं। घड़ों के मुख तृण की डोरी में लगे पाटल फूलों से ढके थे। जल-कण से सिक्त पल्लवों से आम के नये पौधे, जो (पानी के बिना) सूख सकते थे, सरस और रक्षित थे, तथा इनके फलों के घौर स्थाणुओं पर लटक रहे। विश्राम करनेवाले पथिकगण पानी पी रहे थे। इन पनसालों की शीतलता से ग्रीष्म ऋतु की गर्मी दूर हो रही थी। और, अन्यत्र कहीं कहीं लुहार कोयले के लिए लकड़ी जलाकर गर्मी बढ़ा रहे थे।

१—पानी रखने का बर्तन।

२—लाल पत्थर या लाल शक्कर।

चारों ओर से पड़ोस के कुटुम्बी लोग लकड़ी बटोरने के लिए जंगल जा रहे थे। पास के घरों में रहनेवाले बूढ़ों द्वारा रक्षित पाथेय से वे लोग ढके थे। लकड़ी का कठिन काम करने के लिए उन्होंने अपने शरीर तेल से मल रक्खे थे। उनके कन्धों पर कठोर कुठार थे और कण्ठों से प्रात:काल के जलपान की पोटलियाँ लटक रही थीं। वे चोरों के डर से चिथड़े पहने हुए थे। काले बेंत के तिगुने वलय-पाश से उनके गले घिरे थे, जिनमें पत्तों से आवृत मुखवाले जल-पूर्ण पात्र बँधे थे। उनके आगे आगे बलवान् बैलों के जोड़े जा रहे थे।

बाहर व्याध विचर रहे थे। उन्होंने जंगली जानवरों को वेधने में व्यवहृत पर्दों में कूट-पाश मोड़कर रख लिये थे। वे ताँत, तन्त्री, जाल, और वागुर लिये हुए थे। चिड़ीमार इधर उधर विचरण कर रहे थे। वे बाज, तीतर, कपिञ्जल आदि चिड़ियों के पिंजड़ों से लदे थे और उनके बालक कन्धों पर बन्धन के उपकरण रख कर घूम रहे थे। लासे से लिप्त लताओं पर बैठनेवाली चटकाओं के लोभ से झुण्ड के झुण्ड बच्चे बहेलिये विचर रहे थे। चिड़ियों का शिकार खेलते हुए युवक शिकारी झाड़ियों में छिपे तीतरों के प्रति चञ्चल होते कुत्तों को बढ़ावा दे रहे थे।

वृद्ध चक्रवाक के कण्ठ के समान पीले शीधु-बल्कलों के कलाप, तत्काल तोड़े गये गेरू रंग के धातकी फूलों तथा कपासों के अगणित बोरे, अतसी तथा सन के फूलों के बोझ, मक्खी के मधु मोर-पुच्छों तथा अछूते मोम के चाकों के भार, ढेर के ढेर छाल-रहित

खदिर-काष्ठ जिनसे उशीर के मूल लटक रहे थे, कुष्ठ नामक वनस्पति की राशि, एवं प्रौढ़ सिंह के केशर के समान भूरे रोध्र के भार लेकर लोग जा रहे थे। वन के चुने विविध फलों से भरे पिटक अपने मस्तकों पर लेकर ग्राम-वासिनी स्त्रियाँ बेचने की चिन्ता से व्यग्र होकर पास के गाँवों की ओर जा रही थीं।

जहाँ तहाँ गाड़ियों की कतारें चल रही थीं। उनमें तगड़े और तरुण बैल जुटे थे, धूलि से धूसर हलवाहे आगे में बैठकर क्रोध-भरे स्वर से गाड़ियों को बढ़ा रहे थे, बजते हुए ढीले पहियों से वे चीत्कार कर रही थीं, उन पर पुरानी धूल और करीष के ढेर ढोकर कमजोर मिट्टी के कारण रूखे खेतों का संस्कार किया जा रहा था। ईख के अनेक खेतों से समीपवर्ती प्रदेश श्यामल हो रहे थे, प्रयत्न-पूर्वक पोषण करने से शाखाएं बड़ी बड़ी थीं; गड़े हुए महिष-कंकालों के काँटों से डरकर खरगोश उन्नत शुङ्ग[१] तोड़ देते थे; रखवालों द्वारा हलवाहे की लाठियाँ फेंकी जाने से भागते हुए हरिण बाँस के बने ऊँचे घेरे को आसानी से लाँघ जाते थे।

वन के कुटुम्बियों के घर बहुत दूर दूर पर स्थित थे। वे मरकत-सदृश चिकने सुधा वृक्षों से घिरे थे, धनुष बनाने योग्य बाँस के पेड़ों तथा काँटेदार करञ्ज की पाँतियों से दुष्प्रवेश्य थे।

---

१ — अविकसित पत्ते, अग्रभाग।

एरण्ड वचा वक्क सुरस सूरण शिग्रु ग्रन्थिपर्ण गवेधुका तथा गर्मुद्-गुल्म से गृह-वाटिकाएँ भरी थीं [१]। गड़े हुए ऊँचे काठों पर चढ़ाई गई काष्ठालुक लताओं के वितान से छाया होती थी। बदरी के गोल मण्डपों के नीचे गड़े हुए खदिर के कीलों में छोटे छोटे बछड़े बँधे थे। कुक्कुटों की बोली से किसी किसी तरह घरों की स्थिति का अनुमान होता था। आँगनों में अगस्ति-वृक्षों के नीचे वापिकाएँ बनी थीं, जिनके किनारे पक्षियों के लिए पुए फेंके हुए थे। ढेर के ढेर लाल कपास बिखरे हुए थे। बाँस की बत्ती, पत्ते, नल और शर से भीतें बनी हुई थीं। पलाश के फूलों से और गोरोचना से घर मण्डित थे। बल्वज नामक तृण से कोयले के ढेर बँधे हुए थे। सेमल की रुई के प्रचुर सञ्चय थे। नल-धान, पद्म-मूल, खाँड, कुमुद-बीज, बाँस और चावल रक्खे हुए थे। तमाल के बीजों का संग्रह था। काली मिट्टी रखने से चटाइयाँ मलिन हो गई थीं। कुछ कुछ सूखे राजादन और मदन-फल बहुत थे। महुए के आसव और मद्य की बहुलता थी। कमण्डल, घड़े, पिटक और (अन्न रखने के)

१—वचा और वक्क पौधे हैं, सुरस तुलसी है, सुरण कोई कन्द है, शिग्रु=सौभाञ्जन, शोभाञ्जन, सुहाजना; ग्रन्थिपर्ण=मोती के आकार का एक सुगन्धित कन्द; गवेधुका=एक तरह का तृण; गर्मुत्=लताविशेष।

कोठे[१] मौजूद थे। राजमाष, त्रपुष, ककड़ी, कोहड़े और कद्दू के बीज विद्यमान थे। वन-बिड़ाल, मालुधान, नकुल, शालिजात जातक आदि जन्तु पाले जाते थे।

और वह उसी वन-गाँव में ठहर गया।

श्रीबाणभट्ट-कृत हर्षचरित में छत्र-लब्धि
नामक सप्तम उच्छ्वास समाप्त।

१—'कुसूल' की जगह 'कुशूल' पढ़िये।

अष्टम उच्छ्वास

१—भाग्यवानों को इच्छित वस्तुएँ प्रदान करता हुआ दैव भी मानो उनकी पूर्व सेवा करता है।

२—विद्वानों के सम्पर्क से, खोये हुए प्रिय स्वजन के दर्शन से, तथा बहुमूल्य रत्न की प्राप्ति से संसार में किसे सुख नहीं होता है?

तब दूसरे दिन उठकर राजा ने उस गाँव से निकलकर विन्ध्य-वन में प्रवेश किया। वहाँ वह बहुत दिनों तक इधर उधर घूमता रहा। एक दिन राजा घूम ही रहा था कि जंगल के सामन्त शरभकेतु का पुत्र व्याघ्रकेतु कहीं से एक युवा शबर को लेकर आया। उस युवा का केश-पाश कज्जल के समान श्यामल श्याम-लता से ललाट पर बँधा था। उसकी काली ललाट-स्थली, जिस पर तीन रेखाओं की अकारण भ्रुकुटि बनी रहती थी, रात्रि की तरह साहस के कामों में उसे सदा साथ देती थी। कर्ण-फूल के तौर पर पहने हुए सुग्गे के एक पंख की प्रभा से उसका वह कान हरा हो रहा था, जिसमें निर्मल काँच मणि की कर्णिका बँधी थी। उसकी विरल पपनी वाली कुछ कुछ पीड़ित आँखें स्वभावतः

अत्यन्त लाल थीं, मानो उनसे रसायन रस के उपयुक्त तरक्षु[1] का रुधिर निकल रहा था। उसकी नाक दबी हुई थी। अधर स्थूल था। चिबुक धँसी हुई थी। हनु भरी हुई थी। कपोलों पर की हड्डियाँ उन्नत थीं। गला कुछ-कुछ झुका हुआ था। कंधे का आधा भाग उठा हुआ था। अनवरत धनुष झुकाने से विस्तीर्ण हुई तथा कठिन व्यायाम करने से बलवती छाती से वह विन्ध्याचल की तटवर्तिनी चौड़ी शिलाओं का मानो उपहास कर रहा था। अजगर से गुरुतर भुज-युगल से वह हिमालय पर के लम्बे शाल वृक्षों को मानो मात कर रहा था। उसके प्रकोष्ठ की पीठ पर वराह के बालों से नागदमन[2] के मूल बँधे थे, और प्रकोष्ठ पर गोदन्त नामक साँप की मणि से भूषित राँगे का वलय शोभित था। तोंद नहीं होने पर भी उसकी नाभि बड़ी थी। उसका विशाल कटि-प्रदेश कृपाण से विकराल लगता था—कृपाण, जिसका समस्त शिरोभाग पारे के रस से लिपा था, जिसकी चिकनी मूठ सींग की बनी थी, जो सङ्कुचित मृग-चर्म के जाल से आवृत था, जिसका म्यान चित्रक (नामक जन्तु) के चित्र-विचित्र चर्म से तारकित था, और जो अहीरमणी (नामक साँप) के चमड़े से बने दो पट्टों के बीच रक्खा था। नवयौवन से क्षीण होते मध्य-भाग से मांस मानो गिरकर उसकी मोटी जाँघों में भर गया था।

१—भेड़िया, तेंदुआ।

२—विष हरनेवाली एक ओषधि।

उसकी कृशता पीठ पर शोभित तरकस से भरी दीखती थी—तरकस, जो भालू के चमड़े का बना था, चितकबरे बाघ के चमड़े से ढका था, जिसके लोम अलि-कुलवत् काले थे, और जो बड़े बड़े प्रचुर तीरों से भरा था। उसकी भुजा, जिसका ऊपरी त्रिभाग चाष के पुच्छ से भूषित था, जिसकी बनावट खदिर की जटा की सी थी, जिसकी त्वचा मोर के प्रचुर पित्त से चित्रित थी, जो बाँस के समान भारी थी, और जिसके बाएँ कंधे पर धनुष रक्खा था, अत्यन्त बलवती थी; उस भुजा पर एक खरगोश अधोमुख लटक रहा था, तेज तीर से काटकर उसकी एक टाँग में बनाये हुए छेद में प्रवेशित दूसरी टाँग से 'स्वस्तिक-बन्ध[1]' बन गया था। बन्धूक फूल के समान लाल रुधिर से उसकी नाक रंग गई थी, शरीर फैला हुआ होने के कारण उसकी छाती पर के कोमल और सफेद रोम स्पष्ट दीखते थे; धनुष की तेज नोक पर एक तीतर का गला बँधा था और चोंच खुली हुई होने के कारण उसका लाल तालु देख पड़ता था। खरहे और तीतर से उस शवर-युवा ने शिकार में मानो अपना अङ्गराग किया था। उसके दाहिने हाथ में विषम विष से दूषित मुँह वाला विकर्ण तीर था, जैसे जड़ी से पकड़ा गया काला साँप हो। जान पड़ता था, जैसे वह (युवा) पर्वत पर का जङ्गम तमाल-पादप हो, यन्त्र-द्वारा ढाला गया चलता-फिरता प्रस्तर-स्तम्भ हो, चलता हुआ अञ्जन-शिला-खण्ड हो, विन्ध्याचल

१—आसन-विशेष।

से पिघलकर निकलता हुआ लोह-स्तम्भ हो। वह करि-कुल के लिए असाध्य ज्वर, कुरङ्ग-यूथ के लिए काल-पाश, मृगराज-वृन्द के लिए धूमकेतु और महिष-मण्डल के लिए नवमी का महोत्सव था। वह हिंसा का हृदय-सा, पाप का फल-सा, कलि-काल का कारण-सा तथा काल रात्रि का प्रेमी-सा था।

उस युवा को दूर में ही रखकर सामन्त ने राजा से निवेदन किया—"देव, भूकम्प नामक शवर-सेनापति इस समूचे विन्ध्य-वन का स्वामी है और सभी पल्ली-पतियों में श्रेष्ठ है। यह उसी का भागिनेय है। इसका नाम निर्घात है। यह विन्ध्यवन के पत्ते पत्ते को जानता है, स्थानों का क्या कहना। देव इससे पूछें, यह आज्ञापालन करने में समर्थ है।" इतना कहे जाने पर निर्घात ने पृथ्वी पर अपना मस्तक रखकर प्रणाम किया और तीतर के साथ खरहे का उपहार समीप लाया। राजा ने स्वयं उससे सम्मान-पूर्वक पूछा—"अङ्ग, इस समूचे वन-प्रदेश से आप अभिज्ञ हैं। इन दिनों आप विचरण-शील हैं। क्या सेनापति या उसके किसी अनुजीवी ने एक उदाररूपा नारी को देखा है?"

राजा के इस कृपापूर्ण वचन से अपने को धन्य मानते हुए निर्घात ने प्रणाम करके सादर निवेदन किया—"देव, सेनापति से अज्ञात रहकर यहाँ हरिणी भी नहीं विचर सकती, नारी और विशेषतः किसी उदाररूपा नारी की बात तो दूर रहे। तथापि देव के आदेश से इस समय अन्य कामों को छोड़कर प्रतिदिन खोज की जा रही है। यहाँ से कोश भर पर ही पर्वतों

के नीचे मुनियों स पूजित एक तरुखण्ड है। वहाँ एक गिरि-नदी के तट पर छात्र-समूह के बीच दिवाकरमित्र नामक भिक्षोपजीवी पाराशरी भिक्षु रहता है। कदाचित् वह इस वृत्तान्त को जानता हो।" यह सुनकर राजा ने सोचा—"सुना है कि स्वर्गीय पूजन य प्रातःस्मरणीय ग्रहवर्मा के विद्वान् बालमित्र ने, जो मैत्रायणी शाखा के अध्येता तथा द्विजों में श्रेष्ठ थे, त्रयी (=वेदों) को छोड़ बौद्ध-मत में दत्त-चित्त होकर युवावस्था में ही काषाय ग्रहण किया। प्रायः मित्र के दर्शन से भी बहुत आश्वासन होता है। गुणियों के पास सब को जाना ही चाहिए। मुनि किसके पूज्य नहीं हैं? धम की गृहिणी भगवती प्रव्रज्या मूर्ख को भी सम्माननीय बना देती है, फिर सब के मन हरनेवाले विद्वान् का क्या कहना। इन्हें देखने को हमारा हृदय सदा से उत्सुक है। प्रसङ्गवश यह अत्यन्त कल्याणकारी अवसर आ ही गया। जिन्हें देखने का हमने प्रयत्नपूर्वक प्राथना की है, उन्हें हम देख ही लें।" राजा ने प्रकाश में कहा—"अङ्ग, बताओ वह स्थान, जहाँ वह भिक्षोपजीवी है।" यह कहकर उसी के द्वारा बताये जाते रास्ते से वह जाने लगा।

रास्ते में उसने क्रम से भाँति भाँति के तरु देखे। कुछ फलों से लदे थे। कर्णिकारों में कलियाँ आ रही थीं। चम्पक बहुत थे। कुछ फल-युक्त वृक्ष बड़े-बड़े थे। नमेरु फलों के भार से झुके हुए थे। नीले पत्तोंवाले नलद और नारिकेल की कतारें थीं। नागकेसर और देवदारु की पाँतियाँ थीं। कुरवक कलिकाओं से

रोमाञ्चित थ। अशोक के लाल पल्लवों की प्रभा से दशों दिशाएँ लिप्त हो रही थीं। विकसित बकुलों की पराग-राशि से वृक्षों पर मनोहर धूसर छटा पड़ रही थी। अपनी ही धूल से तिलक के तल धूसर थे। हींग के पौधे हिल रहे थे। पूगफलों की प्रचुरता थी। प्रियङ्गु के पौधे फूलों से भूरे लगते थे। पराग-पूर्ण मञ्जरी पर एकत्रित भौंरों का गुञ्जन मनोहर और आनन्द-दायक था। मद-जल से गंदे हुए मुचुकुन्द के तनों से हाथियों के कपोलों का निर्बाध घर्षण सूचित होता था। निडर होकर उछलते हुए चपल कृष्णमृग-शावकों से हरी-भरी भूमि सुहावनी लगती थी। अन्धकार के समान काले तमाल पादपों ने प्रकाश को रोक रक्खा था। देवदारु अपने फूलों के गुच्छों से दंतुल लगते थे। जम्बू और जम्बीर के वृक्षों पर तरल ताम्बूली लताओं के जाल बिछे हुए थे। अपने फूलों के पराग से धवल दीखनेवाले धूली-कदम्ब व्योम को चूम रहे थे। नीचे गिरती मधु-धारा से धरती सिक्त थी। परिमल से घ्राण को तृप्ति हो रही थी। नव-जात कुक्कुटियों ने कुटज के कोटरों में अपनी कुटियाँ बना ली थीं। चटकाएँ अपने बच्चों को उड़ा रही थीं, जो मीठी बोली बोल रहे थे। चकोर अपनी दक्ष चोंचों से सहचरियों को खिला रहे थे। भूरि भूरि भुरुण्ड (नामक पक्षी) निर्भय होकर पके हुए पीलु फल खा रहे थे। निर्दय सुग्गे सदाफल तथा कायफल के फल काट रहे थे और कच्चे फल नीचे गिरा रहे थे। शैलेय के समान सुकुमार शिलातल पर शश-शावक सुखपूर्वक सो रहे थे।

शेफालिका की जड़ों के कोटरों में गोह निडर होकर घूम रहे थे। रङ्कु मृग निरातङ्क थे। नकुल शान्तिपूर्वक खेल रहे थे। मधुर-स्वर कोकिल कलिकाएँ कवलित कर रहे थे। आम्र-कानन में झुण्ड के झुण्ड चमरु मृग जुगाली कर रहे थे। नीलाण्डज मृग सुखपूर्वक बैठे हुए थे। निर्विकार वृक[1] जङ्गली गायों को देख रहे थे, जिनके थन उनके बछड़े पी रहे थे। पास के पहाड़ी झरनों के श्रुति-सुखद निनाद सुनकर हाथी सुख की नींद ले रहे थे, जिससे उनके कर्ण-तालों का बजना मन्द हो गया था। रुरु मृग समीपस्थ किन्नरियों की गीत-ध्वनि का रस पान कर रहे थे। तरक्षु प्रसन्न थे। हरी हरिद्रा काटने से निकले हुए रस से जङ्गली शूकर-शिशुओं के मुँह रङ्ग गये थे। गुञ्जा के कुञ्जों में मार्जार बोल रहे थे। जातीफल के वृक्षों पर शालिजातक[2] सोये हुए थे। लाल कीड़ों द्वारा काटे जाने से क्रुद्ध होकर बन्दर के बच्चों ने उनके खोते उजाड़ डाले। लकुच फल के लोभी गोलाङ्गूल लवलि-लताओं को लाँघ रहे थे। वृक्षों की जड़ों में बालू के थाले बने थे। घड़ों की वक्रपंक्ति से पार्वत्य नदी की प्रखर धारा मुड़ रही थी। सघन शाखाओं पर कमण्डल लटक रहे थे। लता-मण्डपों में सूत के बने सीकों पर रिक्त भिक्षा-पात्र रखे हुए थे। पास की कुटियों में लाल रङ्ग की चैत्य[3] की आकृतियाँ बनी हुई थीं। वल्कल के गेरू

१—भेड़िया, हुँडार।

२—एक तरह का मार्जार।

३—चौरा, चिता-स्मारक, मन्दिर, वृक्ष, बौद्ध-संन्यासी, बौद्ध-मठ।

रक्त से रँगे हुए जल से भूमि दूषित थी। मोर इस तरह बोल रहे थे, जैसे वे तरु मेघ ही हों। वेदों के समान वे (तरु) अपरिमित शाखाओं से युक्त थे। माणिक्य के समान वे अत्यन्त नीले थे। अन्धकार के समान वे लोगों की दृष्टि चुरा रहे थे। यमुना के समान के महाह्रदों[1] से युक्त थे। वसन्त के क्रीड़ा-पर्वतों के समान वे मरकतमणि-श्यामल थे। वे मानो पल्लव-युक्त अञ्जन-पर्वत थे। जान पड़ता था जैसे वे विन्ध्याचल के अटवी से उत्पन्न हुए पुत्र हों, या पृथ्वी को फोड़कर पाताल से उठी हुई अन्धकार-राशि हों, या वर्षा ऋतु के दिवसों के पड़ोसी हों, या कृष्णपक्ष की रात्रियों के आंशिक अवतार हों, या वन-देवताओं के इन्द्रनील-निर्मित प्रासाद हों।

तब राजा ने विचारा—"भदन्त अब समीप में ही होंगे।" नीचे उतरकर उसने गिरि-सरिता में आचमन किया। विश्राम-काल में घोड़े हिनहिनाये, जिससे सारा वन भर गया। अश्व-सेना को वहीं स्थापित कर, हृदय में तपस्विजन-प्रदर्शन योग्य विनय धारण कर तथा माधवगुप्त के कंधे पर दाहिना हाथ रखकर कुछ ही सामन्तों के साथ वह पैदल ही जाने लगा।

अनन्तर उसने उन वृक्षों के बीच दूर से ही शिष्यों से सूचित होते हुए दिवाकरमित्र को देखा। वे शिष्य नाना देशों के थे। स्थान-स्थान पर स्थाणुओं के सहारे, शिलाओं पर, लताभवनों में, निकुञ्जों

१—झील, गहराई, पक्षियों का कलरव।

में, पेड़ों की छाया में, तथा वृक्षों की जड़ों में वे बैठे हुए थे। उनमें वीतराग, आर्हत, परिव्राजक, श्वेताम्बर, श्वेत-वस्त्र-धारी भिक्षु, वैष्णव, ब्रह्मचारी, केश-लुञ्चक[1], कापिल, जैन (=बौद्ध) लोकायतिक (=चार्वाक), काणाद, औपनिषद (=वेदान्तवादी), ऐश्वरकारणिक (=नैयायिक), धातुवादी, धर्म-शास्त्री पौराणिक, यज्ञवादी, वैयाकरण पाञ्चरात्रिक[2], तथा अन्य थे। वे अपने अपने सिद्धान्त अभियोगपूर्वक समझ रहे थे चिन्तन कर रहे थे, प्रत्युत्तर दे रहे थे, संशय प्रकट कर रहे थे, समाधान कर रहे थे, व्युत्पत्ति कर रहे थे, वाद-विवाद कर रहे थे, अभ्यास कर रहे थे और व्याख्या कर रहे थे। पशु-पक्षी तक भदन्त की उपासना कर रहे थे। अत्यन्त विनीत बन्दर भी बुद्ध धर्म और सङ्घ की शरण में रहकर चैत्य-कर्म कर रहे थे। बौद्ध धर्म के उपदेश में निपुण एवं परम उपासक सुग्गे भी (वसुबन्धुकृत) कोश का उपदेश दे रहे थे। शिक्षा-पदों[3] के उपदेश से शान्ति प्राप्त कर शारिकाएँ धर्म-चर्चाएँ कर रही थीं। अनवरत उपदेश सुनने से उल्लू भी आलोक पाकर बोधिसत्व के जातकों का जप कर रहे थे। बौद्ध धर्म के शील उत्पन्न होने से शीतल-स्वभाव बाघ भी निरामिष

१—जो अपने केश उखाड़ लेते हों।

२—पञ्चरात्र मत के अनुयायी। नारद ने पञ्चरात्र मत सुनाया था (महाभारत, शान्तिपर्व अ० ३३९ श्लोक ११२)।

३—सिक्खा-पद (पाली), भिक्षु-जीवन के नियम।

हो गये थे। उसके आसन के समीप सिंहशावक निडर होकर बैठे हुए थे, इससे वह मुनि-श्रेष्ठ मानो अकृत्रिम सिंहासन पर बैठा हुआ था। वन के हरिण उसके पाद-पल्लवों को चाट चाट कर मानो शम पी रहे थे। अपने वाम कर-तल पर बैठे हुए कर्ण-उत्पल-सदृश पारावत-शिशु को नीवार खिलाते हुए वह मैत्री प्रकट कर रहा था। दूसरे कर-किसलय के नखों से निकलती किरणों से वह लोगों को मुग्ध कर रहा था। वह नदूग्रीव मोर को, जैसे मरकत मणि से बने कमण्डल को, जल-धारा से भर रहा था। वह जहाँ तहाँ चीटियों के आगे श्यामाक-चावल के कण स्वयं बिखेर रहा था। वह कोमल और अरुण चीवर पहने हुए था, जैसे प्राची दिशा प्रातःकालीन आभा से लिप्त हो। तत्काल कटे हुए पद्मराग-सदृश देह की रक्तोज्वल प्रभा से लाल हुई दिशाओं को भी वह मानो काषाय धारण करने के लिए उपदेश दे रहा था। अपनी स्निग्ध धवल प्रसन्न आँखों से, जो नम्रता के कारण झुकी हुई थीं और मन्द-मुकुलित कुमुद के समान लगती थीं, जल-पद-बाधित क्षुद्र जन्तुओं के जीवन के लिए वह मानो अमृत बरसा रहा था। वह मानो सभी शास्त्रों के अक्षर रूप परमाणुओं से बना था। वह परम बौद्ध अवलोकितेश्वर था[1]। तपस्या में लगा हुआ वह कभी च्युत नहीं होता था। वह दर्शनार्थियों के लिए सकल पदार्थों की सच्ची स्थिति बतानेवाला आलोक था। वह सुगत के लिए भी

१—विरोध में, परम बौद्ध होने पर भी उसने ईश्वर को देखा।

अभिगमनीय-सा और धर्म के लिए भी आराधनीय-सा था। पूजनीयों, माननीयों और वन्दनीयों में श्रेष्ठ था। वह यम[१] की उत्पत्ति, नियम[१] की नेमि, तप का तत्त्व, शौच की मूर्त्ति, कुशल का कोश, और विश्वास का घर था। वह सदाचार, सर्वज्ञता, उदारता, अनुकम्पा और सुख की पराकाष्ठा पर था। वह मध्यम वयस में था। उसकी अत्यन्त प्रशान्त एवं गम्भीर आकृति देखकर राजा को बड़ी श्रद्धा हुई और उसने दूर से ही शिर, मन और वचन से प्रणाम किया।

दिवाकरमित्र स्वभाव से ही मैत्रीमय था। राजा के उस अदृष्टपूर्व, अलौकिक, सर्व-विजयी, महानुभाव-महिमा-योग्य, असाधारण आकृतिविशेष तथा कुलीनता-सूचक अतिशय नम्रता से आह्लादित होकर उसने नेत्र और चित्त से एक ही साथ उसका स्वागत किया। धीर स्वभाव का होने पर भी वह शीघ्रता से उठ खड़ा हुआ। उठने के कारण बाएँ कन्धे से लटकते हुए चञ्चल चीवर-अञ्चल को समेटकर, तथा अभय-दान देने में निपुण एवं महापुरुष-लक्षण-सूचक रेखाओं से युक्त दाहिना हाथ उठाकर उसने स्नेह-भरे मधुर वचन से राजा को सम्मानपूर्वक आरोग्य-दान देते हुए अनुगृहीत किया। स्वागत-वचन कहकर उसका अभिनन्दन किया। अभ्यागत को गुरुवत् सम्मानित करते हुए अपना आसन बताकर

१—योग का एक अङ्ग (योग-सूत्र २, ३० और २, ३२)।

उसपर बैठने के लिए निमन्त्रित किया। पास में खड़े शिष्य से कहा—'आयुष्मन्, कमण्डल में पाँव धोने का जल लाओ।' राजा ने सोचा—'कुलीनों की सुजनता बिना लोहे का बन्धन पाश है। गुणानुरागी माननीय ग्रहवर्मा ने इनके गुणों का ठीक ही उतना बखान किया था।' प्रकाश में कहा—'भगवन्, आपके दर्शनरूप पुण्य से ही मैं अनुगृहीत हो चुका, अब आर्य द्वारा प्रदर्शित यह अनुग्रह पुनरुक्त-सा जान पड़ता है। आपकी आँखों ने मुझे पहले ही स्वीकृत कर लिया है, अब आसन दान आदि का उपचार करना मुझे मानो पराया बनाना है। आप-सरीखों के सामने पृथ्वी ही ऊँचा आसन है। संभाषणरूप अमृत से मेरा सारा शरीर प्रक्षालित हो चुका है, अब एक अंग के निमित्त पादोदक व्यर्थ है। आप सुख से बैठें। हम भी बैठते हैं।' यह कहकर वह पृथ्वी पर ही बैठ गया।

भदन्त ने विचारा—"बड़ों का यथार्थ अलंकार अतिशय विनय है।" जब बार बार अनुरोध किये जाने पर भी राजा ने उत्तर नहीं दिया, तब वह फिर से अपने ही आसन पर विराजमान हुआ। राजा के मुख-कमल में दृष्टि गड़ाये हुए वह कुछ देर तक निश्चल रहा। फिर निर्मल दन्तमयूखों से मानो कलि-काल का पापरूप मल धोते हुए एवं फल-मूल खाने से उत्पन्न हुई सुगन्धित लताएँ, जो विकसित फूलों से धवल थीं, मानो उगलते हुए उसने कहा—"यह संसार, जिसका सुन्दर सार आज प्रकाशित हुआ, अब से अनिन्द्य ही नहीं, वन्द्य भी है। क्या लोग इसे आश्रय

नहीं समझ रहे हैं कि यह रूप हठात् दृष्टि-पथ पर आया ? हृदय के इस आनन्द से अनुमान होता है कि पूर्व-जन्म में हमने पुण्य अर्जन किये थे। दुर्लभदर्शन 'देवानां प्रिय' को दिखाकर हमारे इस तप ने इस जन्म में भी हमें फल दे दिया। आँखों ने आतृप्ति अमृत-पान किया। अब चित्त को मोक्ष-सुख की उत्कण्ठा नहीं रही। महान् पुण्यों के बिना आप-सरीखों में दृष्टि विश्राम नहीं करती। आपका जन्म-दिवस सुदिवस था। आपकी जननी सुजाता थी, जिसने सभी जीवों के रक्षक आप आयुष्मान् को जन्म दिया। वे पुण्य भी पुण्यवान् हैं, जिनके आप परिणाम हैं। उन परमाणुओं ने भी तप किया था, जिनसे आपके सब अवयव बने हैं। वह सौभाग्य भाग्यवान् है, जिसने आपका आश्रय लिया है। वह पौरुष धन्य है, जो आ के आश्रय में है। सत्य है कि आप पुण्यात्मा को देखकर मुमुक्षु होने पर भी मुझे मनुज-जन्म में पुनः श्रद्धा हो गई। इच्छा नहीं होने पर भी हम ने कामदेव को देखा। आज वन-देवताओं का नेत्र कृतार्थ हुआ। आज पादपों का जन्म सफल हुआ, जिन्हें आप दृष्टिगोचर हुए। आप अमृतमय हैं, आपके वचन में माधुर्य होना ही चाहिए। ध्यान करने पर भी मैं सम्भावना नहीं कर सकता हूँ कि इस शैशव में आपके इस विनय का पृथ्वी पर कौन उपाध्याय हो सकता है। आप दीर्घायु के जन्म से पूर्व सद्गुण सर्वथा सूने थे। वह राजा धन्य है, जिसके वंश में आप निर्दोष मणि के समान उत्पन्न हुए हैं। संयोगवश आये हुए ऐसे पुण्यात्मा का प्रिय कैसे करूँ, यह सोच

कर हमारा चित्त चञ्चल हो रहा है। कन्द, मूल, फल एवं गिरि सरिता-जल पर हमारा अधिकार ही क्या? ये तो सकल वन-चारियों के लिए समान रूप से सुलभ हैं। हमारा यह क्षुद्र शरीर दूसरों के उपकार के लिए है। हमारा सर्वस्व प्रिय अतिथि-सत्कार के लिए है। कुछ विद्या-विन्दु हमारे अधीन हैं। किन्तु प्रीति यह नहीं विचार रही है कि आपके लिए इनका कुछ उपयोग भी हो सकता है। यदि कार्य-लेश आपको बाधा न डाले और बात गोपनीय न हो, तो आप कहिये, मेरा हृदय यह सब सुनने को उत्सुक है। किस कार्य-भार से आपने इस अभ्रमणयोग्य भूमि को भूषित किया है? आप कल्याणराशि इस शून्य अटवी में कब तक पर्यटन कर क्लेशित होंगे? आपका यह शरीर, जो संताप के योग्य नहीं है क्यों संतप्त-सा जान पड़ रहा है?"

राजा ने सादर उत्तर दिया—"आर्य, आपने इस आदर-भरे वचन से ही अमृत-सदृश हृदय-धृति-कर मधुरस-प्रवाह निरन्तर बरसाते हुए सब कुछ कर लिया। मैं धन्य हूँ जो आदरणीय नहीं होने पर भी आप मान्य मुझे पूज्य समझ रहे हैं। महावन में भ्रमण कर क्लेश उठाने का कारण श्रीमान् जानें। मेरे सभी प्रिय स्वजन नष्ट हो गये, केवल एक छोटी बहिन बची हुई है, वही मेरे जीते रहने का बन्धन है। वह भी स्वामि-वियोग के कारण शत्रु-अपमान के भय से घूमती हुई इस विन्ध्य-वन में घुस गई है, जो अशुभ शबरों की सेना से व्याप्त है, जो अगणित हाथियों के झुण्ड से भरा है, जहाँ अपरिमित सिंहों और शरभों का भय

है, जहाँ बड़े बड़े महिषों से पथिकों का मार्ग बन्द है, जो अतितीक्ष्ण तृणों और कुशों से कर्कश है और जो शत शत गर्तों से विषम है। अतः उसे खोजने के लिए हम रात रात भर बराबर इस वन में घूम रहे हैं, किन्तु उसे पा नहीं रहे हैं। गुरुदेव बतावें यदि उन्होंने कदाचित् किसी वन-चर से उसका समाचार सुना हो।"

तब यह सुनकर उद्विग्न-सा होकर भदन्त ने फिर से कहा—"ऐसा कोई समाचार हमें नहीं मिला है। हम यह प्रिय-संवाद-रूप उपहार देने के योग्य नहीं हैं।" इस प्रकार वह बोल ही रहा था कि एक दूसरा भिक्षु, जो शान्त वयस का था, अकस्मात् घबड़ाया हुआ-सा सामने आ गया और हाथ जोड़कर अत्यन्त करुण होकर आँसू बहाते हुए कहने लगा—"भगवन् भदन्त, बड़ी करुण घटना है। एक बाला जो पहले सौभाग्यवती रही होगी, प्रबल विपत्ति से अभिभूत हो शोक के आवेश से विवश होकर अग्नि में प्रवेश कर रही है। प्राण निकलने के पूर्व ही भगवान् उसे सान्त्वना दें, उचित आश्वासन से अनुगृहीत करें। दुखी कृमि-कीट भी दया-राशि आर्य के दृष्टि-गोचर होने पर पूर्व में मरने से बच गया है।"

राजा को बहिन की शङ्का हो गई। सहोदरा के स्नेह से उसका भीतर द्रवीभूत हो गया। दुःख से हृदय संतप्त हो गया। गला गद्गद हो गया। वाणी विकल हो गई। अश्रु-पूर्ण आँखों से उसने पूछा—"हे पाराशरी भिक्षु, ऐसी स्त्री कितनी दूर पर है? क्या वह अब तक जीती होगी? क्या आपने पूछा—'कौन हो?

किसकी हो ? कहाँ से आई हो ? क्यों इस वन में आई हो ? किसलिए अग्नि में प्रवेश कर रही हो ?' आदि से सब कह डालिये, मैं सुनना चाहता हूँ। किस प्रकार आर्य ने उसे देखा ? उसकी आकृति कैसी है ?"

राजा द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर भिक्षु ने कहा—"हे महानुभाव, सुनिये। आज प्रात:काल ही भगवान् की वन्दना कर मैं इसी बालुकामय कोमल नदी-तट पर स्वेच्छापूर्वक बहुत दूर तक विचरता चला गया। गिरि-नदी के निकट वनलताओं के एक कुञ्ज में नारियों का अनवरत, अतिकरुण, हृदय-द्रावक रुदन सुना, जो मानो हिम के कारण कमलों का विनाश होने से कातर हुई भ्रमरियों का गुञ्जन था, या ऊँचे तान से बजाई जाती हुई वीणा का झङ्कार था। यह सुनकर मुझे कुतूहल हो गया और मैं उस स्थान पर गया। वहाँ मैंने स्त्रियों के झुण्ड से घिरी हुई एक दूसरी स्त्री को देखा। उन स्त्रियों की पत्थर के टुकड़ों से कटी हुई अंगुलियों से लहू निकल रहा था। उनकी एड़ियों में तृण की नोकें चुभने से जो पीड़ा हुई उससे उनकी आँखें बन्द हो गईं। रास्ते की थकावट से उनके पाँव फूलकर निश्चल थे। उनके गुल्फों पर, जो स्थाणुओं से घायल होकर व्यथित थे, भोज-पत्र बँधे हुए थे। वातखुड रोग की व्यथा से लंगड़ाती हुई टाँगें ज्वर से ग्रस्त थीं। घुटनों से नीचे के भाग धूल से धूसर थे। खजूर की जटाओं से उनके घुटने कट गये थे। शतावरी से उनकी जाँघें विदीर्ण हो गई थीं। विदारी से उनके बारीक दुकूल फट गये

थे। बाँस के बड़े बड़े कण्टकों की नोकों से उनके कञ्चुक चीरे गये थे। फल के लोभ से झुकाई गई काँटेदार बदरी-लताओं से उनकी कोमल हथेलियाँ विद्ध हो गई थीं। कुरङ्ग के सींगों से कन्द-मूल-फल उखाड़ने के कारण उनके बाहु व्यथित थे। पान के अभाव में सूखे हुए मुँहों से वे आँवले के कोमल फल चबा रही थीं। कुश के फूलों की चोट से लाल होकर फूलती हुई आँखों पर उन्होंने मनःशिला का लेप कर लिया था। काँटेदार लताओं से उनके केश-पाश छिन्न हो गये थे। कुछ स्त्रियाँ किसलयों से आतपत्र का काम ले रही थीं। कुछ केले के पत्तों को व्यजन बनाये हुए थीं। कुछ कमल के पत्तों के पुटों में जल लिये हुए थीं। कुछ मृणाल के फूलों को पाथेय बनाये हुए थीं। कुछ चीनांशुक के अञ्चलों से बन सींकों में स्थापित नारियल-कोशों में आम का तेल रक्खे हुए थीं। स्त्रियों के उस झुण्ड में बचे हुए कुछ गूंगे, कुबड़े, वामन, बहरे और बबर थे। बीच में पड़ी हुई उस स्त्री को आपत्काल में भी उज्ज्वल लावण्य नहीं छोड़ रहा था, जैसे कुलीन व्यक्ति को। समीपवर्ती वनलताओं के सरस किसलयों के प्रतिबिम्ब पड़ने से, मानो दुःखरूप ताजे घावों से, उसके शरीर का भीतर लाल हो रहा था। कुश के कठोर अङ्कुरों के घात्र से निकलते लहू से, मानो सदा की भाँति महावर लगाने से, उसके पाँव लाल हो गये थे। अन्य नारी द्वारा नाल पकड़कर कमल के पत्तों से छाया करने पर भी उसका मुख छाया-विहीन ही रहा। शून्यता में वह मानो आकाश को भी मात कर रही थी। निश्चेतनता में वह

मानो मिट्टी की बनी थी। निश्वास की सम्पत्ति में वह मानो हवा की बनी थी। सन्ताप की अधिकता में वह मानो अग्निमयी थी। आँसू बहाने में वह मानो सलिलमयी थी। वह निराश्रयता में व्योम-सी चञ्चलता में बिजली-सी और अनवरत विलाप करने में शब्द-सी थी। मोती, रेशमी वस्त्र, रत्न फूल, सुवर्ण-पत्र और आभरण गिराकर कल्प-लता की भाँति वह महा-वन में पड़ी हुई थी। शिव के शिर से गिरी हुई गङ्गा के समान वह धरती पर आ गई थी वन के फूलों की धूल से उसके पाद-पल्लव धूसर थे। प्रभात-काल की चन्द्र-मूर्त्ति की भाँति वह लोकान्तर की अभिलाषा कर रही थी। अश्रु-प्रवाह के कारण उसकी बड़ी बड़ी सफेद आँखें थक गई थीं और जल सूखने के कारण जिसकी लम्बी धवल जड़ दीख रही हो उस मन्दाकिनी-कमलिनी के समान वह मुरझा रही थी। असह्य रवि-किरण के स्पर्श से बन्द हुई कुमुदिनी के समान वह दुःखपूर्वक दिवस बिता रही थी। बत्ती जल जाने से निराश्रित प्रभातकालीन दीप-शिखा की भाँति उसकी देह कृश और निष्प्रभ हो गई थी। वन की हथिनी के समान वह बड़े जलाशय में डूबी हुई थी और पास के परिजनों के उद्योग से ही उसकी रक्षा हो रही थी वह घने वन में और ध्यान में, वृक्ष के नीचे और मृत्यु के मुख में, धाई की गोद में और बड़ी विपत्ति में थी। वह स्वामी और सुख से दूर कर दी गई थी। पर्यटन और जीवन से अलग हो गई थी। केश-कलाप और मरण-उपाय-चिन्तन से आकुल थी। रास्ते की धूल से और

अङ्गों की वेदना से विवर्ण हो गई थी। प्रचण्ड आतप और वैधव्य से जल गई थी। हाथ और मौन से उसका मुँह बन्द था। प्रिय सखियों और शोक से वह गृहीत थी। उसके बन्धु और विलास नष्ट हो गये थे, आत्मा और कान सूने थे। उसने अपने गहने और सभी काम छोड़ दिये थे। उसके वलय और मनोरथ भग्न हो गये थे। चरणों में परिचारिकाएँ और दर्भ के नुकीले अङ्कुर लगे थे। हृदय के भीतर उसका प्रियतम था और हृदय के ऊपर आँखें गड़ी थीं। उसके शोक-निश्वास और केश लम्बे थे। शरीर और पुण्य क्षीण हो गये थे। पाँवों पर वृद्धाएँ और अश्रु-धाराएँ गिर रही थीं। प्राण और परिजन कुछ ही बचे हुए थे। वह आँखें खोलने में आलसी और आँसू बहाने में दक्ष थी। उसकी चिन्ता अविच्छिन्न थी और आशा विच्छिन्न। उसका शरीर कृश था और साँस स्थूल। वह दुःख से भरी थी और सत्त्व से खाली। वह थकावट से ग्रस्त थी और हृदय से शून्य। उसका निश्चय निश्चल था और धैर्य विचलित। वह विपत्तियों का निवास, आधियों का आश्रय, दुरवस्थाओं का स्थान, अधैर्य का आधार व्यथाओं का आवास, आपदाओं का आस्पद, दुर्भाग्य का लक्ष्य, उद्वेग की पराकाष्ठा, करुणा का कारण और पराधीनता की चरम सीमा थी। मैंने सोचा – 'आश्चर्य! ऐसी आकृति को भी संताप छूता है।' जब मैं समीप गया, तब उस अवस्था में भी उसने सादर शिर झुकाकर प्रणाम किया। प्रबल करुणा के वश होकर मैं उससे बोलने की इच्छा से बार बार मन में सोचने

लगा—कैसे मैं इस मनस्विनी को सम्बोधित करूँ। यदि 'वत्स' कहकर पुकारूँ, तो अतिस्नेह का प्रदर्शन होगा। यदि 'माँ' कहूँ, तो चाटु होगा। यदि 'बहिन' कहूँ, तो अपनी बड़ाई होगी। यदि 'देवी' कहूँ, तो यह परिजनों का सम्बोधन होगा। यदि 'राजपुत्री' कहूँ, तो यह संशयात्मक होगा। यदि 'उपासिका' कहूँ, तो मेरा मनोरथ प्रकट करना होगा। यदि 'स्वामिनी' कहूँ, तो भृत्य-भाव को प्राप्त करना होगा। 'भद्र' कहकर पुकारना सामान्य स्त्रियों के योग्य होगा। 'आयुष्मती' कहना इस अवस्था में अप्रिय होगा। कल्याणी' कहना इस दशा में विपरीत होगा। 'चन्द्रमुखी' कहना मुनि-जन योग्य नहीं है। 'बाला' कहना गौरव-युक्त नहीं है। 'आर्या' कहना जरा आरोपण करना है। 'पुण्य-वती' कहना फल के विपरीत है। 'आप' कहना सर्व-साधारण है। और भी, 'कौन हो?' यह सुन्दर नहीं होगा। 'क्यों रोती हो?' इससे दुःख का कारण स्मरण होगा। 'मत रोओ' यह शोक-हेतु दूर नहीं करने के कारण शोभा नहीं देगा। 'धैर्य धारण करो' यह किस आश्रय पर कहूँ? 'स्वागतम्' इसका समय बीत गया। 'सुख से तो हो?' यह मिथ्या है।

"इस तरह मैं सोच ही रहा था कि स्त्रियों के उस झुण्ड से उत्तम रूपवाली शोक-विकल एक दूसरी स्त्री उठकर समीप आई। अपने शिर को, जो कुछ बालों के सफेद होने से रंगबिरंगा लगता था, धरती पर रखकर वह अतुल-संताप-सूचक आँसुओं से अपने पाँव तथा अतिदीन शब्दों से मेरा हृदय जलाती हुई कहने लगी—

'भगवन्, प्रव्रज्या प्राय: सभी जीवों पर दया करती है। बौद्ध दूसरों के दु:ख दूर करने के लिए गृहीत व्रत पालन करने में निपुण होते हैं। शाक्य मुनि का उपदेश करुणा का कुल-गृह है बौद्ध सज्जनता सभी लोगों का उपकार करने के लिए तैयार रहती है। मुनियों का धर्म परलोक प्राप्त करने का साधन है, और लोग प्राण रक्षा से बढ़कर दूसरा कोई पुण्य नहीं बताते हैं। युवती स्त्रियाँ स्वभावत: दया के पात्र हैं, फिर विपद् में पड़ी हुई युवतियों का क्या कहना; और साधुजन आर्त प्राणियों के लिए सिद्ध-क्षेत्र हैं। हमारी यह स्वामिनी पिता की मृत्यु से, पति के परलोक-गमन से, भाई के वियोग से, शेष बान्धवों के विनाश से, हृदय की अतिकोमलता से और अनपत्यता से निराश्रय हो गई; नीच शत्रु-द्वारा यह मनस्विनी अपमानित हुई; महावन में घूमने से यह सुकुमारी क्लेशित हुई; दुष्ट दैव द्वारा दी गई ऐसी अनेक विपत्तियों से इसका हृदय व्याकुल हुआ। अब यह दारुण दु:ख सहने में असमर्थ है। अत:, जिनका स्वप्न में भी पहले कभी अतिक्रमण नहीं किया था उन गुरुजनों की अवहेलना कर, जिनका प्रणय परिहास में भी पहले कभी खण्डित नहीं किया था उन अनुनय करती हुई प्रिय सखियों का अनादर कर, जिन्हें मन से भी पहले कभी अपमानित नहीं किया था उन समझाते हुए अशरण साश्रु भृत्यों का अपमान कर, यह अग्नि में प्रवेश कर रही है। बचाइये! सब आर्य भी असह्य शोक दूर करने के उपाय बताने में निपुण अपनी वाणी का प्रयोग इसके सम्बन्ध में करें।' इस तरह

अतिदीन होकर बोलती हुई उस स्त्री को उठाकर मैंने और भी उद्विग्न होकर धीरे धीरे कहा—'आर्ये, जो कुछ कहती हो, सब सच है। इस पुण्याशया का यह शोक मेरी वाणी की पहुँच से बाहर है। यदि मुहूर्त भर भी इसकी रक्षा की जा सके तो कुछ देर के बाद यह प्रार्थना व्यर्थ न होगी। दूसरे बुद्ध भगवान् के समान मेरे गुरु समीप में ही हैं। मेरे द्वारा यह समाचार कहे जाने पर वह परम दयालु निश्चय आवेंगे। दुःखरूपी अन्धकार नाश करनेवाले बौद्ध सुभाषितों से तथा दृष्टान्तपूर्ण अपनी निपुण वाणी से, जो नाना शास्त्रों से गौरव-युक्त है, इस पुण्यशीला को ज्ञान-मार्ग पर लावेंगे।' यह सुनकर 'आर्य शीघ्रता कर' यह कहती हुई वह फिर भी पाँवों पर गिरी। शीघ्रता से आकर मैंने अशरण एवं दीन युवति-वृन्द के मरने की तैयारी का यह अधैर्य-कर तथा अतिकरुण समाचार पूज्य गुरु से निवेदन किया।"

अनन्तर भिक्षु का वह अश्रु-मिश्रित भाषण सुनकर राजा शोक से उदास हो गया, यद्यपि उसकी बहिन का नाम भी नहीं लिया गया। सभी प्रकार से मिलती हुई दशा से उसका सन्देह दूर हो गया। सहोदरा की अवस्था सुनने से उसके कान मानो जल गये। तब उसने भिक्षुओं के आचार्य से कहा—"आर्य, इस अनार्य, अतिकठिन-हृदय, अतिक्रूर और मन्दभाग्य की ही वह बेचारी बहन है, जो अकारण वैरी दैव द्वारा इस अवस्था में लाई गई—फटता हुआ मेरा हृदय ऐसा ही बता रहा है।" फिर उसने उस भिक्षु से भी कहा—"आर्य, उठिये; बताइये कि वह कहाँ है।

यदि किसी प्रकार वह अब तक जीवित हो, तो हम अनेक प्राणों की रक्षा से होनेवाले पुण्य उपार्जन करने जा रहे हैं।" यह कहता हुआ ही वह उठ गया।

तब सभी शिष्यों सहित आचार्य के आगे-आगे तथा घोड़ों से उतरकर उन्हें पीछे से खींचते हुए समस्त सामन्तों के आगे आगे राजा, जिसके सामने वह भिक्षु राह बता रहा था, उस स्थान की ओर पैदल ही तेजी से जाने लगा। क्रम से समीप पहुँचकर उसने लताओं की आड़ में मरने को इच्छुक स्त्रियों के तत्कालोचित अनेक प्रकार के आलाप सुने—"भगवन् धर्म, जल्दी दौड़ो। हे कुल-देवता, कहाँ हो? देवी पृथ्वी, दुखी पुत्री को धैर्य न दे रही हो? पुष्पभूति की कुटुम्बिनी लक्ष्मी कहाँ चली गई? हे मुखर-वंश के नाथ, विविध आधियों से आकुल इस अनाथा विधवा वधू को क्यों नहीं प्रबोध[1] दे रहे हो? भगवन् बुद्ध, संतापित भक्तजन के प्रति सोये हुए हो! पुष्पभूति-घर के पक्षपाती राजधर्म, क्यों उदासीन हो गये हो? विपत्ति के बन्धु विन्ध्य, तुम्हें भी यह विफल प्रणाम करती हूँ। हे माता अटवी, विपत्ति में पड़ी इस पुत्री का विलाप नहीं सुन रही हो? सूर्य, अशरण पतिव्रता को बचाओ। प्रयत्नपूर्वक रक्षित कृतघ्न निष्ठुर चारित्र, राज-पुत्री की रक्षा क्यों नहीं कर रहे हो? इन सुलक्षणों से ही इसे क्या मिला? बेटी से स्नेह करनेवाली देवी यशोवती, दुर्दैवरूपी

१—चेतना, ज्ञान, सान्त्वना।

डाकू ने तुम्हें लूट लिया। हे देव प्रतापशील, जलनेवाली पुत्री के पास क्यों नहीं आ रहे हो? अपत्य-प्रेम शिथिल हो गया। महाराज राज्यवर्धन, दौड़ते क्यों नहीं? बहिन का स्नेह मन्द पड़ गया। अहो, मृत व्यक्ति निष्ठुर होते हैं? पापी पावक दूर जा, स्त्री की हत्या करने में निष्करुण, जलते हुए लज्जा नहीं आती है? भाई पवन, तुम्हारी दासी हूँ, दुखियों के दुख हरनेवाले देव हर्ष के पास जल्द जाकर कहो कि देवी जल रही हैं। अतिनिर्दय एवं नीच शोक, तुम्हारी कामना पूरी हुई। दुखदायी वियोग-राक्षस, तुम्हें संतोष हुआ। इस विजन वन में किसे पुकारूँ, किससे कहूँ, किसकी शरण जाऊँ, किस दिशा में जाऊँ, मैं अभागिन क्या करूँ? हे गान्धारी, यह लता-पाश (अपने को बाँधने के लिए) मैंने लिया। हे पिशाची मोचनिका, शाखा लेने का कलह छोड़ो। हे कलहंसी, अब तक क्यों शिर फोड़ रही हो? हे मङ्गलिका, क्यों अब तक मुक्तकण्ठ से रो रही हो? हे सुन्दरी, सखियाँ दूर हो रही हैं। हे शबरिका, इस अमङ्गल शव-शिबिर में कैसे रहोगी? सुतनु, तुम भी अग्नि में गिरोगी? मृणालकोमल मालावती, म्लान हो रही हो। हे माता मातङ्गिका, क्या तुमने भी मरना अङ्गीकार किया? हे वत्स वत्सिका, घृणित प्रेत-नगर में कैसे रहोगी? हे नागरिका, इस स्वामि-भक्ति से तुमने गौरव प्राप्त किया है। हे विराजिका, राजपुत्री की विपत्ति में मरने का निश्चय करके तुम शोभित हो। हे पनभरनी, तुम प्रपात से गिरने का उद्यम करोगी, अपना भाग तुम्हें मालूम है;

तुम धन्य हो। हे केतकी, ऐसी अच्छी स्वामिनी फिर स्वप्न में भी कहाँ से पाओगी ? हे मेनका, तुम्हारा शरीर जलाकर देव अग्नि जन्म-जन्म में तुम्हें देवी की दासता दे। हे विजया, आग सुलगाओ। हे सानुमती, स्वर्ग जाने की इच्छा करनेवाली इन्दीवारिका प्रणाम कर रही है। हे कामदासी, मुझे अग्नि की प्रदक्षिणा करने का अवसर दो। हे विरचिका, अग्नि प्रज्वलित करो। हे किरातिका, फूल बिखेरो। हे कुररिका, कुरबक की कलियों से चिता भर दो। हे चामर-ग्राहिणी, अन्तिम वार कण्ठ में आलिङ्गन करो। हे नर्मदा, परिहास में मैं जो जोरों से हँसती थी उसे क्षमा करना। हे भद्र सुभद्रा, तुम्हारा परलोक-गमन मङ्गल-कर हो! बड़ों के गुणों से अनुराग करनेवाली ग्रामेयिका, तुम्हें सद्गति मिले! हे वसन्तिका, स्थान दो। हे देवी, छत्रधारी विदा माँगती है, देखो! तुम्हारी प्रिय विजयसेना प्राण छोड़ रही है। यह नाटक-सूत्रधारी मुक्तिका मुक्तकण्ठ से निकट में रो रही है। हे राजपुत्री, तुम्हारी प्रिय ताम्बूल-वाहिनी पत्रलता पाँव पड़ रही है। हे कलिङ्गसेना, यह अन्तिम आलिङ्गन है, मुझे अपनी छाती से खूब दाबो। हे वसन्तसेना, प्राण प्रवास कर रहे हैं। हे मञ्जुलिका, दुःसह दुःख के हजार आँसुओं से लिप्त आँखें कितनी बार पोंछ रही हो और मेरा आश्लेष कर कितना रो रही हो ? हे यशोधना, सृष्टि ही प्रायः ऐसी (विपत्तियों से भरी) है। हे माधविका, क्या अब भी मुझे धैर्य दे रही हो ? क्या यह अवस्था सान्त्वना देने की है ? हे कालिन्दी, सखियों को अनुनयपूर्वक

प्रणाम करने का समय बीत गया। हे पगली मत्तपालिका, मैंने सखियों के नम्र अनुरोधों की उपेक्षा कर दी (अर्थात् मरने को दृढ़-संकल्प हूँ)। हे आग्रहवती चकोरवती, पाँव छोड़ो। हे कमलिनी, दैव को बार बार उलहना देने से क्या? सखियों के सहवास का सुख हमें चिरकाल तक न मिला। आर्या महत्त-रिका तरंगसेना, नमस्कार। हे सखी सौदामिनी, मैंने तुम्हें देखा। हे कुमुदिका, अग्नि-पूजा के फूल लाओ। हे रोहिणी, चिता पर चढ़ने के लिए हाथ का सहारा दो। माता धात्री, धीर होओ; पापियों के कर्मों के ऐसे ही फल होते हैं। आर्य के चरणों में मेरी यह अञ्जलि! माता परलोक जाते समय यह अन्तिम प्रणाम! हे लवलिका, मरते समय हृदय में यह प्रबल आनन्दमय उत्कण्ठा क्यों? क्यों ये अङ्ग रोमाञ्चित और पुलकित हो रहे हैं? हे वामनिका, मेरी बाईं आँख फड़क रही है। हे मित्र वायस, मुझ क्षीणपुण्या के सामने दूधवाले वृक्ष पर व्यर्थ रुक रहे हो। हे हरिणी, उत्तर की ओर घोड़ों का हिनहिनाना! हे प्रभावती, पेड़ों की आड़ में किसका यह ऊँचा आतपत्र देख पड़ता है? हे कुरङ्गिका, किसने प्रातःस्मरणीय अमृतमय आर्य का नाम लिया? हे देवी, हर्ष के आगमन-महोत्सव से भाग्यवती हो!"

यह सब सुनकर राजा सत्वर समीप आया और अग्नि-प्रवेश के लिए उद्यत राज्यश्री को मूर्छित होते देखा। मूर्छा से उसकी आँखें बन्द थीं। राजा ने अपने हाथ से ससम्भ्रम उसका ललाट पकड़ा। प्रिय भाई के उस आनन्द-दायक हस्त-स्पर्श से—हस्त-

स्पर्श, जिसने प्रकोष्ठ पर बँधी ओषधियों से मानो रस-प्रवाह जो जीवन-दान करने में समर्थ है गिराया, वलय की मणियों का अचिंत्य प्रभाव मानो वमन किया, नखरूपी चन्द्र की किरणों से मानो अमृत बरसाया, चन्द्रकान्त की चूड़ामणि चन्द्रोदय होने पर जिससे हिम-कण गिरता है सिर पर मानो बाँधी, मानो मृणालमय अति शीतल अँगुलियों से उसके जलते हृदय को शान्त किया, कहीं से मानो जीवन ले आया—राज्यश्री ने सहसा अपनी आँखें खोल दीं। जिसके आगमन और दर्शन की आशा नहीं थी, हठात् आये हुए उस भाई के, जैसे स्वप्न में देखे हुए के, वह गले लगी। तत्काल उदय हुए भारी दुःख से उसका सारा शरीर व्याप्त हो गया और नदी की खुली हुई धाराओं के सदृश आँखों से अश्रु-जल बहाती हुई उसने "हा तात, हा अम्ब, हा सखीगण," बार बार कहकर विलाप किया। बहिन के अतिशय स्नेह से शोकित होकर भाई मुक्तकण्ठ से देर तक रोया और "वत्स, स्थिर होओ" कहते हुए उसने अपने हाथों से उसका मुँह ढककर आश्वासन दिया। "हे कल्याणिनी, बड़े भाई का वचन मानो" इस तरह आचार्य ने याचना की। "हे देवी, देव की अवस्था नहीं देखती हो? बहुत मत रोओ" इस तरह राजाओं ने प्रार्थना की। हे स्वामिनी, भाई को देखो" इस प्रकार परिजनों ने समझाया। "हे पुत्री, विश्राम कर लो, फिर रोना" इस प्रकार वृद्ध बन्धुओं ने मना किया। 'हे प्रियसखी, कितना रोती हो? चुप होओ, देव अत्यन्त दुखी हो रहे हैं" इस प्रकार सखियों ने अनुनय किया। इतने पर भी,

चिरकाल से उपभुक्त दुःसह दुःख-राशि समाप्त होने के कारण वाष्प-भार से राज्यश्री का कण्ठ पीड़ित हुआ, अत्यधिक शोक से अन्तःकरण भर गया और अतिकरुण स्वर से कुछ देर तक वह जोर जोर से रोई। शोक का वेग बीतने पर, भाई उसे अग्नि के समीप से खींच लाया और वह निकट-वर्त्ती वृक्ष के नीचे बैठ गई।

धीरे धीरे उस प्रकार हर्ष को जानकर आचार्य का आदर उसके प्रति बहुत बढ़ गया। कुछ देर के बाद आचार्य ने गुप्त संकेत देकर अपने शिष्य से कमल के पत्तों में जल मँगवाया और आचार्य उसे स्वयं राजा के पास मुख-प्रक्षालन के लिए ले गया। सादर जल लेकर उसने पहले अपनी बहिन के नेत्र, जो चिर-काल के आँसुओं से व्याप्त तथा अनवरत रोने से लाल कमल के समान थे, धोये और पीछे अपने। जब उसने अपना मुख चन्द्र धो लिया, तब सब लोग ऐसे निःशब्द हो गये जैसे वे चित्र में हों। तब राजा ने धीरे धीरे बहिन से कहा—"वत्स, पूज्य भदन्त को प्रणाम करो। ये तुम्हारे पति के दूसरे हृदय हैं और हमारे गुरु। वचन मानकर प्रणाम करते समय पति का परिचय सुनने से राजपुत्री की आँखों में जल आ गया; और प्रयत्न-पूर्वक रोके गये अश्रु-जल के भार से आचार्य का धैर्य भङ्ग हो गया, आँखें सजल हो गईं। आँखों को कुछ घुमाकर आचार्य ने लम्बी साँस ली। और क्षण भर रहकर विनय दिखाते हुए उस मृदु-भाषी ने मधुर वाणी में राजा से कहा—"हे कल्याणराशि, बहुत मत रोइये, राजा लोग अब तक भी रोना

नहीं बन्द कर रहे हैं। अवश्यकरणीय स्नान-विधि कीजिये और स्नान करके फिर उसी स्थान पर चले जाइये।"

तब लौकिक आचार तथा आचार्य-वचन के अनुसार राजा ने उठकर गिरि-सरिता में स्नान किया और बहिन के साथ उसी स्थान पर गया। वहाँ उसके पति को पिण्ड देने में प्रयत्न दिखाने के बाद जब शोक-विवश भगिनी आहार करने को राजी हुई, तब राजा ने उसके पास में रहकर उसे परिजनों के साथ सावधानी से भोजन कराया; बाद को स्वयं भोजन किया। भोजन करने के बाद कैद होने से लेकर बहिन का सारा हाल—और गौड़-संभ्रम[1] के समय कान्यकुब्ज की कारा से गुप्त नामक कुलपुत्र द्वारा उसका निकाला जाना, निकाले जाने पर राज्यवर्धन की मृत्यु का समाचार सुनना, सुनकर आहार छोड़ना, आहार-त्याग से पीड़ित होकर विन्ध्याटवी में घूमने का क्लेश, और विरक्त होकर अग्नि-प्रवेश का उपक्रम—विस्तारपूर्वक परिजन से सुना। तब अनुजीवियों से दूर एक एक वृक्ष के नीचे एकान्त स्थान पर बहिन के साथ सुख से बैठे हुए राजा के पास जाकर आचार्य धीरे धीरे बैठ गया। और कुछ देर ठहरकर वह क्रम से कहने लगा—

"श्रीमन्, सुनिये। हमें कुछ निवेदन करना है। जवानी की गर्मी से अपनी अनेक भार्याओं का, जो यौवन के आगमन से चमक रही थीं, अपमान कर इस रात्रि-कर्णपूर अतिचञ्चल चन्द्रमा

१—गौड़ाधिप द्वारा की गई गड़बड़ी अर्थात् राज्यवर्धन की हत्या।

ने देव-पुरोहित बृहस्पति की धर्मपत्नी तारा को अपनी पत्नी बनाने की इच्छा से हर लिया और स्वर्ग से भाग गया। चकित चकोर की-सी आँखोंवाली उस सर्वाङ्गसुन्दरी अतिकामुका के साथ रमण करते हुए उसने रमणीय देशों में विचरण किया। बहुत दिनों के बाद सब देवताओं के वचन का सम्मान करने के लिए उसने बृहस्पति को पुनः उसकी पत्नी लौटा दी। उस सुन्दरी के विरह में उसका हृदय आग के बिना सतत जलता रहा।

एक दिन उदयाचल से उगते हुए उसने समुद्र के विमल जल में अपना प्रतिबिम्ब देखा। देखकर कामार्त्त होते हुए उसने तारा का पुलकित मुख स्मरण किया। काम के उन्माद से उसका मन मथित हुआ, स्वःस्थ[1] होने पर भी अस्वस्थ होकर उसने अपनी आँखों से, जिसके तारक मानो कुमुद-वन की प्रभा का पान करने से धवल थे, आँसू की मोटी मोटी बूँदें टपकाईं। सागर में गिरती हुई उन सभी बूँदों को मोती की शुक्तियों ने पी लिया। उनके उदर में वे मोती हो गईं और रसातलनिवासी वासुकि नामक सर्पराज ने उन्हें किसी किसी तरह प्राप्त किया। उसने उन मोतियों से, जो पाताल में भी तारागण की तरह देख पड़ते थे, एकावली बनाई। और उसका नाम मन्दाकिनी रक्खा। सब ओषधियों के अधिपति भगवान् सोम के प्रभाव से वह अत्यन्त विषघ्नी हुई और हिम तथा अमृत से उत्पत्ति होने के कारण उसके

१—स्वर्ग में स्थित; 'स्वस्थ' पढ़ने से विरोधाभास होगा

स्पर्श से सब जीवों का संताप दूर हो जाता था। इसी से वासुकि विष की गर्मी शान्त करने के लिए उसे सदा धारण किये रहता था।

कुछ समय बीतने पर एक बार नागार्जुन नामक भिक्षु ने, जो नागों द्वारा ही पाताल लाया गया था, उस नाग-राज से याचना कर वह एकावली प्राप्त की। रसातल से निकलकर उसने त्रि-समुद्र के अधिपति सातवाहन नामक अपने मित्र नृपति को वह दे दी। काल-क्रम से शिष्यपरम्परा से वह किसी प्रकार हमारे हाथ में आई। यद्यपि आप-सरीखों को दान देकर सत्कृत करना मानो अपमानित करना है, तथापि आप बुद्धिमान्, आयुष्मान्, जो सभी प्राणियों की रक्षा में प्रवृत्त हैं और (इसी लिए) जिनका शरीर रक्षणीय है, विष से बचने के खयाल से इसे ओषधि समझकर ग्रहण करें।" इतना कह उसने समीपवर्ती भिक्षु के कपड़े के छोर में बँधी हुई उस एकावली को बाहर निकाला।

निकालते ही जब उसका प्रभावर्षी उज्ज्वल रश्मिमण्डल अवकाश पाकर फैल गया और दिशाएँ एक साथ ही धवल हो गईं, तब जान पड़ा जैसे मुकुलित लता-बधुओं के प्रति उत्कण्ठित तरुगण मूल से शिखर तक खिल गये हों, जैसे वन्य सरोवरों के हंस, जो अभिनव मृणाल के लोभी होते हैं, अपने हिलते परों से आकाश को धवल करते हुए उड़ रहे हों, जैसे फूलों के भार से बिखेरे जाते पराग से धवल तथा गर्भ के फटने से प्रकट होती पंखुड़ियों से शुचि केतकी-वाटिकाएँ खिल रही हों, जैसे विकसित

होते पत्तों से दन्तुर दीखनेवाली कुमुदिनियाँ जग रही हों, जैसे सिंहगण हिलते सफेद केसर के भार से दिशाओं को भरते हुए चल रहे हों, जैसे वन-देवतागण, दाँतों के आलोक से वन को प्रकाशित करते हुए हँस रहे हों, जैसे काश के वन शिथिल हुए कुसुम-कोशों से निकलते केसरों से अट्टहास करते हुए विकसित हो रहे हों, जैसे तेजी से घूमते पल्लव-सदृश पुच्छ-मण्डलों से श्वेत दीखते चमरीमृगों के झुण्ड घूम रहे हों, जैसे बढ़ती हुई फेनिल तरल तरङ्गों वाली गिरि-नदी पसर रही हो, जैसे अपर तारागण के लाभ से प्रसन्न पूर्णचन्द्र अपनी फैलती किरणों से दिशाओं को भरते हुए उगा हो, जैसे दावानल की धूल से धूसर हुए दिगन्त प्रक्षालित हो गये हों, जैसे अश्रु-जल से मलिन हुए नारियों के मुख फिर से धुल गये हों।

किरण-पुञ्ज से आकुल होती आँखों को बार बार खोलते हुए और मूँदते हुए राजा ने बड़े यत्न से उस एकावली को देखा। वह सब दिशाओं में व्याप्त होनेवाली[1] दिग्गज-करों की पंक्ति बद्ध शीकर-राशि-सी थी, बादल से मुक्त हुई[2] शारदीय ज्योत्स्ना की रेखा-सी थी, बालचन्द्र के चलने की उज्ज्वल-पद-चिह्न-युक्त[3] लीख-सी थी, हाथों से गिरकर[4] निश्चल

१—सब आशाएँ पूरी करनेवाली (एकावली के पक्ष में)।

२—सघन मोती वाली (एकावली के पक्ष में)।

३—उज्ज्वल मध्य-मणि से युक्त (एकावली के पक्ष में)।

४—या हस्त-नक्षत्र को छोड़कर।

हुई सप्तर्षियों की माला-सी थी, सारे संसार के आभूषणों की प्रभा को मात करनेवाली ईशान-कोण की शशि-कला-सी थी[१], क्षीरसागर से निकली धवलकान्ति-सी थी। अनेक भूभृतों की परम्परा से आगत गङ्गा के समान वह दुर्गति हरनेवाली थी। अनवरत फहराती हुई रेशमी पताका के समान वह भावी साम्राज्य की अग्रदूतिका थी। अनुकूल ईश्वर की दन्त-पंक्ति के समान वह कर्पूर-उज्ज्वल थी। भुवन-लक्ष्मी की स्वयंवर-माला के समान वर-मनोरथ[२] पूरा करने में समर्थ थी। वसुधा की आनन्द-मुस्कान के समान कर[३]-पल्लव के आवरण से दुर्निरीक्ष्य थी। मन्त्र, कोष, और सेना की साधना में प्रवृत्त राज-धर्म की अक्षमाला-सी थी। कुबेर-कोश की संख्या-सूचक पट्टिका-सी थी, जो मुद्रारूपी अलङ्कार से युक्त थी[४]। इसे देखकर वह देर तक विस्मित होता रहा। आचार्य ने इसे उठाकर राजा के सुन्दर कंधे पर बाँध दिया। राजा ने प्रीतिपूर्वक कहा—"आर्य, प्रायः पुरुष ऐसे रत्नों के योग्य नहीं होते हैं। यह आर्य की तपस्या-सिद्धि है या देवता-

१—या, त्रिभुवन-भूषण शिव के भस्म की प्रभा को मात करनेवाली शैवी शशि-कला-सी थी।

२—वर का मनोरथ (भुवन-लक्ष्मी के पक्ष में); उत्तम मनोरथ (एकावली के पक्ष में)।

३—हाथ (वसुधा के पक्ष में); किरण (एकावली के पक्ष में)।

४—या,······पट्टिका के समान समुद्र का अलङ्कार थी।

प्रसाद है। अब हमें अपने पर ही क्या अधिकार रहा? फिर हम इसका ग्रहण या प्रत्याख्यान करनेवाले कौन? दर्शन के समय ही आर्य के प्रचुर सद्गुणों ने हमारा हृदय हर लिया; उसी समय से हम पराधीन हैं। मैंने सङ्कल्प कर लिया है कि आजीवन यह शरीर आर्य के उपयोग में आवे। इस (शरीर) के सम्बन्ध में आर्य की जैसी इच्छा हो, करें।"

कुछ समय बीतने पर और एकावली-वर्णन-सम्बन्धी लोगों की बातचीत समाप्त होने पर ढाढ़स पाकर राज्यश्री ने पत्रलता नामक ताम्बूल-वाहिनी को बुलाकर उसके कान के समीप गुप्त रीति से धीरे-धीरे कुछ कहा। पत्रलता ने राजा से सविनय निवेदन किया—"देव, देवी निवेदन करती हैं—'स्मरण नहीं होता है कि आर्य के सामने मैंने कदाचित् कोई वचन उच्च स्वर से कहा हो, निवेदन करना कहाँ से? किंतु यह असह्य शोक मुझे बोलने के लिए प्रेरित करता है और दुर्दैव द्वारा दी गई यह दुरवस्था विनय शिथिल कर रही है। अबलाओं का अवलम्ब पति या अपत्य है। जो दोनों से रहित हैं उनके लिए शोकानल से जलता हुआ जीवन धारण करना केवल ढिठाई ही है। मैंने मरने के लिए जो यत्न किया वह आर्य के आगमन से रुक गया। अतः काषाय-ग्रहण की आज्ञा से इस अपुण्यात्मा व्यक्ति को अनुगृहीत करें।' इति" यह सुनकर राजा चुप रहा।

तब आचार्य ने धीरे धीरे कहा—"हे आयुष्मती, शोक पिशाच का दूसरा नाम है, अपस्मार का दूसरा रूप है, अन्धकार का यौवन

है, एक प्रकार का विष है। यह बिना यम का[१] प्रेत-नगर-नायक है। निर्वाण नहीं होनेवाली[२] अग्नि है। बिना क्षय का[३] राज-यक्ष्मा है। बिना लक्ष्मी-निवास का जनार्दन[४] (= कृष्ण) है। अपुण्य में लगा हुआ क्षपणक है।[५] निद्रा-नाशक होते हुए भी बोध-शून्य है।[६] आलस्य-रहित[७] सन्निपात है। विनायक[८] (= गणेश) होते हुए शिव का सहचर नहीं है। बुध-रहित ग्रहवर्ग है।[९] योग के बिना उत्पन्न हुआ परम ज्ञान है।[१०] स्नेह अर्थात् तेल-घी आदि से हुआ वायु-प्रकोप है।[११] मानस से[१२] अग्नि की उत्पत्ति है। आर्द्रता से धूल का उड़ना है।[१३] रस[१४] से सूखना है। लाली से कालिमा का होना है।[१५] यह अनवरत अस्र[१६]-स्रावी हृदय का महाव्रण है, कृष्णपक्ष की रात्रियों के

१—विरोध-परिहार में :—अन्त-रहित, अमर।

२—विरोध परिहार में :—कष्ट-दायक।

३—चिरस्थायी। ४—जन-पीड़क।

५—पापों के कारण हुआ जन-नाशक है।

६—नहीं टूटनेवाली एक तरह की नींद है।

७—अग्नि-सदृश। ८—विघ्न।

९—मूर्खों से सेवित प्रेत-वर्ग है।

१०—प्रतिकूल दैव के कारण उत्पन्न हुई अग्नि है।

११—स्नेह से हुआ उन्माद रोग है।

१२ मानसरोवर; मन।

१३—वत्सलता से रजोगुण की उत्पत्ति है।

१४—जल; स्नेह। १५—आसक्ति से मरना है। १६—अश्रु, रक्त।

मोहान्धकार में पहुँचा हुआ प्राण-तस्कर है, सकल प्राणियों का नाशक शून्यता-हेतु है, सारे शरीर को क्षीण करने में दक्ष दोष-शिरोमणि है, कृशता श्वास और प्रलापरूपी उपद्रवों से भरा दीर्घ-रोग है, सब लोगों का विनाश-सूचक बुरा ग्रह है, जीवन अपहरण करने में दक्ष बिना बादल का वज्रपात है जो देर तक चमकता[1] है; ऐसे शोक का आक्रमण विद्वानों के भी हृदय —जो अनवद्य विद्यारूपी विद्युत् से चमकते हैं, गहन ग्रन्थों की ग्रन्थियों के गूढ़ अर्थ समझने से गम्भीर होते हैं, भूरि-भूरि काव्य-कथाओं से कठोर होते हैं, एवं अनेक शास्त्र धारण करने से विशाल होते हैं- नहीं सह सकते हैं, फिर नई नवमालिका के फूलों के समान कोमल अबलाओं के बिसतन्तुवत् दुर्बल हृदय का क्या कहना।

"ऐसा होने पर, हे सत्यव्रता, बोलो, क्या करती हो? किसे उलहना देती हो? किसके सामने जोर जोर से रो रही हो, या अपना हृदय-दाही दुःख बता रही हो? बुद्धिमान् मनुष्य को आँखें बन्द कर सब सह लेना चाहिए। हे पुण्यवती, यह पुरातन स्थिति है, इसे कौन टाल सकता है? सब लोगों के यहाँ जन्म-जरा-मरण-रूपी घटी-यन्त्र की लम्बी डोरी रात-दिन सरक रही है। अन्तः-करण[2] की चेष्टा देखने में निपुण धर्मराज की कठोर व्यवस्था

१—अक्षणरुचि, का दूसरा अर्थ है 'बिजली से रहित'।

२—अन्तःकरण से पूर्व 'पञ्चमहाभूत-पञ्चकुल-अधिष्ठित' पदांश का अर्थ अस्पष्ट है।

किसी को नहीं छोड़ती है। आयु की गणना करने में कुशल काल नालिका[१] घर घर में निरन्तर चूती रहती है। सब जन्तुओं के जीवन की बलि लेनेवाली यम की प्रचण्ड आज्ञा जगत् में तेजी से चल रही है। अखिल प्राणियों का प्रयाण सूचित करने में कुशल यम-पटह अनवरत बज रहे हैं। कालकूट विष के समान काले शरीर वाले यमदूत, जिनकी आँखें तपे लोहे की तरह लाल होती हैं, हाथों में काल-पाश लिये हुए झुण्ड बाँध बाँध कर प्रतिदिशा में, प्रतिपुर में, पर्यटन कर रहे हैं। सब जीवों का संहार करने के लिए घोर वध-घोषणा, जो भीषण किङ्करों के हाथों में बजती यम-घण्टाओं के तीक्ष्ण टङ्कार से भयङ्कर लगती है, घर घर में घूम रही है। दिशा दिशा में परलोक के पथिकों के चलने के मार्ग हैं, जहाँ चिता के धुएँ से धूसर यम-पताकाओं पर गीध की दृष्टियाँ पड़ती हैं, जो दुःख के विलाप से आकुल कुटम्बिनियों द्वारा बिखेरे गये केश-कलाप से रंग-बिरंगी लगने वाली हजारों शव-शिविकाओं से भरे रहते हैं, और जहाँ श्मशान-शिविर के शृगाल-शावक किलकिलाते रहते हैं। काल-रात्रि की लम्बी जिह्वा—जो चिता के कोयले के समान काली होती है, लोहू से भरी रहती है, छिद्रान्वेषिणी होती है, और सब लोगों को कवलित करने के आस्वाद की लोभी होती है—प्राणियों के प्राण चाटती रहती है (वैसे ही जैसे गाय अपने बछड़े का कंधा)।

१—समय-सूचक घटिका; प्राचीन समय में जल-पूर्ण चूते हुए घड़े से समय निरूपण किया जाता था।

सब जीवों को खानेवाली भगवती मृत्यु की भूख को तृप्ति की शिक्षा ही नहीं मिली है। अनित्यता-नदी बहुत तेजी से बहती है। क्षिति आदि पञ्च-महाभूतों की गोष्ठी क्षणिक है। शरीर-धारियों के शरीर यन्त्र के बने पिंजड़े हैं, जिनकी लकड़ियाँ रात को भंगुर हो जाती हैं। शरीर-निर्माण के परमाणु अशुभ और शुभ के आवेश से विवश होकर भग्न हो जाते हैं। प्राण बाँधने के पाश तन्त्री और तन्तु टूटनेवाले हैं। यह सारा नश्वर विश्व अपने का ईश्वर नहीं है (अर्थात् स्वतन्त्र नहीं है)।

"ऐसा समझकर, हे मेधाविनी, अपने मृदु मन में तम का अतिप्रसार मत होने दो। विवेक का एक क्षण भी धैर्य का आधार होता है। यद्यपि यह शोक दूर तक पहुँच गया है, तथापि इस समय पिता और गुरु के सदृश बड़े भाई की अपेक्षा करनी ही चाहिए। अन्यथा, काषाय-ग्रहण के लिए आपके इस मङ्गलमय सङ्कल्प का सम्मान कौन नहीं कर सकता? पवित्र परिव्रज्या (= संन्यास) समस्त मानसिक ताप शान्त करती है, मनस्वियों के लिए यह श्रेष्ठ पद है। किंतु श्रीमान् हर्ष अभी तुम्हारा मनोरथ भग्न कर रहे हैं। यह जो कुछ आदेश देंगे, उसका पालन करना चाहिए। यदि ये भाई हैं, बड़े हैं, वत्सल हैं, गुणवान् हैं, राजा हैं, तब इनकी आज्ञा में तुम्हें अवश्य रहना चाहिए।" इतना कहकर वह ठहर गया।

उसके चुप होने पर राजा ने कहा—"आर्य को छोड़कर कौन दूसरा ऐसा कहेगा? विना प्रार्थना के ही दैव ने आपको

बनाया, जो दारुण विपत्ति में लोगों के आश्रय-स्तम्भ हैं। आप स्नेह से आर्द्र[1] तथा मोहरूप अंधकार ध्वंस करनेवाले धर्मप्रदीप हैं। किंतु आपके प्रणय-प्रदान से दुर्विनीत हुई मेरी अतिप्रीति दुर्लभ मनोरथ की अभिलाषा करती है। हृदय की लघिमा से प्रेरित होकर अतिप्रियता धीर को भी धृष्ट बना देती है। युक्तायुक्त के विचार से शून्य होने के कारण स्वार्थ की तृष्णा शालीन व्यक्ति को भी प्रागल्भ्य की शिक्षा देती है। श्रेष्ठ पुरुष सागर के समान अभ्यर्थना की मर्यादा की रक्षा करते हैं। अभ्यर्थना के विना पहले ही आपने मुझ अतिथि को यह शरीर दे दिया है। अतः भदन्त से कुछ याचना करता हूँ—मेरी यह बाल बहिन अत्यन्त दुखी है; अतः सब काम की अवहेलना से क्षति होने पर भी मुझे अभी इसका लालन करना होगा। और भाई का वध करनेवाले रिपु-कुल का नाश करने को उद्यत हुए इस बाहु के अधीन होकर मैंने सब लोगों के सामने प्रतिज्ञा की है। इस प्रथम अपमान को नहीं सह सकने के कारण मैंने अपनी आत्मा कोप को सौंप दी। अतः आर्य भी कुछ समय तक अपने को मेरे कार्य में नियुक्त करें। अतिथि को यह शरीर दें। आज से जब तक यह व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता है और तात के विनाश से विकल प्रजाओं को आश्वासन देता है, तब तक मेरी बहिन मेरे समीप रहे और आप पूज्य धार्मिक

१—तेल से भरे (प्रदीप-पक्ष में)।

कथाओं से, ज्ञान-प्रद विमल उपदेशों से, शीलशान्ति देनेवाली शिक्षाओं से, तथा क्लेश नाश करनेवाले बौद्ध दर्शनों से इसे प्रतिबोध कराते रहें—यही मेरी इच्छा है। जब मैं अपना काम समाप्त कर चुकूँगा, तब मेरे ही साथ यह काषाय ग्रहण करेगी। याचकों को महान् व्यक्ति क्या नहीं देते हैं? धैर्य-सागर दधीच ने अपनी हड्डियों से इन्द्र को कृतार्थ किया। क्या अपने जीवन की पर्वाह न करते हुए दयालु बुद्ध (बोधिसत्त्व) ने भी अनुकम्पा समझकर हिंसक जन्तुओं के लिए भी अपने को अनेकों बार नहीं अर्पित कर दिया? इसके बाद आप ही बहुत (दृष्टान्त) जानते हैं।" इतना कहकर राजा चुप हो गया।

भदन्त ने फिर कहा—"भाग्यवान् पुरुष अपनी इच्छा दो बार नहीं प्रकट करते हैं। इस व्यक्ति ने चित्तद्वारा आपके गुणों से शरीर का यह उपहार पहले ही स्वीकार करा लिया है। छोटे या बड़े काम में इस निरुपयोग का उपयोग आप गुणवान् के अधीन है।" भदन्त द्वारा प्रणय का इस प्रकार अभिनन्दन किया जाने पर राजा प्रसन्न होकर उस रात को वहीं रहा। प्रातःकाल में वस्त्र- अलङ्कार आदि के दान से निर्घात को संतुष्ट कर विसर्जित किया और आचार्य के साथ बहिन को लेकर कुछ ही दिनों की यात्रा में गङ्गा के तट पर स्थित शिविर को लौट गया।

वहाँ वह राज्यश्री-प्राप्ति की कथा अपने मित्रों से कह ही रहा था कि सूर्य ने गगन-तल को पार किया। चक्रवाक का प्रिय दिवस

मकरन्द से भूरे पद्माकर की तरह संकुचित हुआ। सूर्य ने अपने शरीर में पवित्र किरण-जाल को, जो नवरुधिर के समान अरुण और लोकालोक पर्वत तक फैला हुआ था, वैसे ही समेट लिया, जैसे (अन्य शिष्यों ने) कुपित याज्ञवल्क्य के मुख से उगला हुआ यजुर्वेद फिर से निगल लिया था। धीरे धीरे बढ़ती हुई लाली से विराजमान सूर्य एक मुहूर्त तक दिखाई पड़ा, जैसे भीम के हाथों से उखाड़ी गई अश्वत्थामा के मस्तक पर की जन्म-जात चूड़ामणी हो, जो ताजे शोणित से लाल होने के कारण भयङ्कर लगती थी; जैसे पितामह का कपालकर्पर हो, जो भीषण भिक्षा देने में तत्पर त्रिपुरारि द्वारा काटे गये मुण्ड की नाड़ियों से निकले रुधिर से भरकर लाल हो गया था; जैसे पितृ-वध से क्रुद्ध परशुराम द्वारा रचित दूर-व्यापी रुधिरमय ह्रद हो, जो कार्तवीर्य के विशाल कंधे को काटनेवाले कुठार से काटे गये दुष्ट क्षत्रियों के कण्ठ-कुहरों से निकले रुधिर-प्रवाह के हजारों नलों से भर गया था; जैसे आकाश में घूमता हुआ विभावसु नामक प्राण-रहित कच्छप हो, जो भय से हाथ, पाँव और मस्तक सिकोड़ने के कारण गोल लगता था तथा गरुड़ के बड़े नख-पञ्जर के आक्रमण से निकले लहू से सिक्त था; जैसे काटा गया अण्डाकार मांस-पिण्ड हो, जिसके गर्भ में अरुण था; जैसे नियत काल के बीतने से संतापित काली द्वारा फेंका गया मेरुपर्वत का धातु-तट हो; जैसे बृहस्पति का अतिभीषण कड़ाह हो, जिसका भीतर शोणित के काढ़े से लाल था और जिससे असुर-बध के लिए चरु पकाने की क्रिया सूचित होती थी; जैसे महाभैरव

का विशाल मुख-मण्डल हो, जो गज-दानव से तत्क्षण निकले लहू के लेप से भीषण लगता था।

सागर के जल में पड़ते हुए सूर्य-मण्डल के प्रतिबिम्बों से चमकीले बादलों पर अवलम्बित संध्या उस वेताल के समान लगती थी, जो कच्चा मांस लिये हुए हो। संध्या की आभा में सागर का जल-प्रवाह रंग गया, मानो विष्णु की मोटी जाँघों के बीच पीसे गये मधु और कैटभ के रुधिर से उस (सागर) का शरीर फिर से लाल हो गया। संध्या-समय का अवसान होते ही निशा नरेन्द्र के लिए उपहार में चन्द्रमा ले आई; मानो निज-कुल की कीर्ति अपरिमित यश के प्यासे उस राजा के लिए मुक्ता-शैल की शिला से बना पात्र ले आई; मानो राज्यश्री[1] कृत-युग आरम्भ करने को उद्यत उस राजा के लिए आदिराज की राज्याधिकार की राजत महामुद्रा ले आई; मानो आयति[2] सब द्वीपों को जीतने की इच्छा से प्रस्थान किये हुए उस राजा के लिए श्वेतद्वीप का दूत ले आई।[3]

श्रीबाणभट्टकृत हर्षचरित में अष्टम उच्छ्वास समाप्त।

१—राज्य-लक्ष्मी, हर्ष की बहिन।

२—भविष्य, नियति।

३—सूर्यास्त के वर्णन से युद्ध का रक्त-पात तथा हर्ष के शत्रु का विनाश और चन्द्रोदय से हर्ष की राज्य-लक्ष्मी का उदय सूचित होता है—कॉवेल और टॉमस।